शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रैल : १९६५ ☆ वर्ष २० वाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ११

आध्यात्मिक पद

★

कर रे! कर रे! कर रे! तू आतम हित कर रे।
काल अनंत गयो जग भ्रमतैं, भवभव के दुख हर रे।।टेक।।

लाख कोटि भव तपस्या करतैं जितो कर्म तेरी जर रे।
स्वास उस्वासमांहि सो नासै, जब अनुभव चित धर रे।।कर रे।।१।।

काहे कष्ट सहै बनमांहीं, राग दोष परिहर रे।
काज होय समभाव विना नहिं, भवौं पचि पचि मर रे।।कर रे.।।२।।

लाख सीख की सीख एक यह, आतम निज, पर पर रे।
कोटि ग्रंथ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे।।कर रे।।३।।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया

[२३९]

एक अंक चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

देशव्रतोद्योतनम् (दूसरी आवृत्ति सचित्र)

श्री पद्मनदी पंचविंशतिका के देशव्रतोद्यतन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन, हिन्दी अनु० श्री बंशीधरजी शास्त्र एम०ए०, प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, ५५ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता, पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य ०.५०, पोस्टेज २५ पैसे, श्रावक को तत्त्वज्ञान सहित षट्कर्मों को प्रतिदिन करने के विषय में, आप इस पुस्तिका को अवश्य पढ़ें इसमें उत्तम भक्तिमय प्रसंग के पाँच चित्र हैं। जो देखते ही बनता है।

(१) जिन प्रतिमा अंकन्यास विधि, (२) दक्षिण तीर्थ श्री बाहुबली चरणाभिषेक, (३) पोन्नूर क्षेत्र में कुन्दकुन्दाचार्य के चरणों की पूजा, आदि।

★

श्री समयसार कलश टीका

(पंडित श्री राजमल्लजी कृत)

हस्तलिखित प्रतियों से बराबर मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में, सुंदर ढंग से, बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन:—

आत्महित का जिसको प्रयोजन हो उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर स्वानुभूतिमय उपाय को बतानेवाला यह ग्रंथ अनुपम ज्ञान निधि है। पंडित श्री राजमलजी (विक्रम संवत् १६१५) पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। लागत मूल्य ५) होने पर घटाया हुआ मूल्य २) पोस्टेज १.४५

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रैल : १९६५ ☆ वर्ष २० वाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ११

ब्रह्मचर्य

संवत् २००५ में जब छह कुमारिका बहिनों ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया, उस अवसर पर 'आत्मधर्म' के ब्रह्मचर्य अंक के लिये ब्रह्मचर्य की महिमा संबंधी एक विस्तृत लेख तैयार किया गया था, किंतु उस समय वह प्रकाशित नहीं हो सका। आज उसी लेख का कुछ भाग दिया जा रहा है। अध्यात्मदृष्टि सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का स्वरूप, उसकी महिमा, उसका फल तथा उसकी प्रेरणा दर्शानेवाला यह ज्ञान-वैराग्यपोषक लेख सबको पसंद आयेगा। *—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन*

'अनगार धर्मामृत' में—मुमुक्षु जीवों को ब्रह्मचर्य का पालन करने में विशेष रुचि उत्पन्न हो—इस हेतु उसके माहात्म्य का वर्णन करके, सदा उसे पालन करने का उद्यम करने की प्रेरणा देते हुए पंडित आशाधरजी कहते हैं कि—

शार्दूलविक्रीड़ित

प्रादुषन्ति यतः फलन्निजगुणाः सर्वेप्यखर्वौजसो
यत्प्रव्हीकुरुते चकास्ति च यतस्तद्ब्राह्मसुच्चैर्महः।
त्यक्त्वा स्त्रीविषयस्पृहादि दशधाऽब्रह्मामलं पालय
स्त्रीवैराग्यनिमित्त पंचकपरस्तद्ब्रह्मचर्यं सदा॥५९॥

जिसके होने से आत्मा के अहिंसादिक भाव वृद्धिंगत होते हैं ऐसी, शुद्ध निजात्मा की

अनुभूतिरूप परिणति को 'ब्रह्म' कहते हैं और उससे विरुद्ध मैथुनभाव को 'अब्रह्म' कहते हैं। जिसप्रकार 'ब्रह्म' के होने से अहिंसादिक भावों में वृद्धि होती है, उसीप्रकार 'अब्रह्म' के होने से हिंसादिक भाव बढ़ते हैं; क्योंकि मैथुन सेवन में उद्यत हुआ मनुष्य त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा आदि अनेक पाप करता है। इसप्रकार स्वभाव से ही दूषित ऐसे इस अब्रह्म के दस भेद हैं। हे मोक्षार्थी भव्य जीव! इन दसों प्रकार के अब्रह्म को तू देव, गुरु और साधर्मियों की साक्षीपूर्वक छोड़, और सर्वप्रकार की स्त्रियों में वैराग्य लाने के लिये—उनमें रमण करने की इच्छा का नाश करने के लिये—विषय के दोषों को पुनः पुनः विचार आदि प्रकार की भावनाओं में प्रधानरूप से तत्पर रहकर अपने ग्रहण किये हुए उस निर्मल निरतिचार ब्रह्मचर्य का जीवनपर्यंत पालन कर तथा उसे भलीभाँति प्रकाशित कर, क्योंकि उपरोक्त कथनानुसार ब्रह्मचर्य के निमित्त से ही व्रत-शील आदि प्रकार का संयम प्रगट होता है और आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि करने में समर्थ होता है। 'आत्मिक ब्रह्म' को धारण करनेवाले के निकट इन्द्रादिक भी झुक जाते हैं तथा उससे शब्दब्रह्म अथवा केवलज्ञानरूपी ब्रह्म का श्रुतकेवलित्व अथवा केवलित्व तक की उत्कृष्टता को प्राप्त एवं स्व-पर प्रकाशक ऐसा तेज प्रकाशित होता है, वह प्रसिद्ध है।

[यहाँ प्रथम ब्रह्मचर्य और अब्रह्मचर्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि—अपने आत्मा की अनुभूतिरूप शुद्धपरिणति, सो ब्रह्मचर्य है। जहाँ ऐसा आत्मिक ब्रह्मचर्य प्रगट हुआ हो, वहाँ बाह्य ब्रह्मचर्य कैसा होता है, वह भी बतलाया है और फिर उसका उत्कृष्ट फल बतलाकर प्रेरणा की है कि—हे भव्य मुमुक्षु! तू देव-गुरु और साधर्मी की साक्षीपूर्वक ऐसे पवित्र ब्रह्मचर्य को धारण करके जीवनपर्यंत उसका पालन कर। ब्रह्मचर्य की दृढ़ता के लिये बारम्बार वैराग्य भावनाओं का चिंतवन करने को कहा है।]

(२) ब्रह्मचर्य के स्वरूप का वर्णन करके, उसका पालन करनेवाले को परमानंद की प्राप्ति होती है, सो बतलाते हैं:—

उपजाति

या ब्रह्मणि स्वात्मनि शुद्धबुद्धे चर्या परद्रव्यमुचः प्रवृत्ति।
तद्ब्रह्मचर्यं व्रतसार्वभौमं, ये पान्ति ते यान्ति परं प्रमोदम्॥६०॥

दृष्ट, श्रुत और अनुभूत इन तीनों प्रकार के भोगों की आकांक्षारूप निदान तथा अन्य भी रागादि वैभाविक दोष, उन सबसे रहित होने के कारण यह आत्मा 'शुद्ध' हैं और समस्त पदार्थों का

युगपत् साक्षात्कार—प्रत्यक्ष अवलोकन—करने में समर्थ हैं। इसलिये वह 'बुद्ध' है; ऐसे शुद्ध और बुद्ध निजात्मा में—अपने ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में परद्रव्यों का त्याग करनेवाले, अपने और पर के शरीर के प्रति ममत्व से भी रहित व्यक्ति की, जो प्रवृत्ति अर्थात् अप्रतिहत परिणतिरूप चर्या होती है, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं; क्योंकि व्याकरण से भी ऐसा अर्थ होता है कि—'ब्रह्म में चर्या, सो ब्रह्मचर्य'—ब्रह्मस्वरूप आत्मा में विचरना, सो ब्रह्मचर्य है। ऐसा ब्रह्मचर्यव्रत सर्व व्रतों में सार्वभौम (चक्रवर्ती) समान है। समस्त भूमि के अधिपति चक्रवर्ती को सार्वभौम कहा जाता है। जिसप्रकार पृथ्वी के समस्त राजा-महाराजा चक्रवर्ती के आधीन रहते हैं, उसीप्रकार शेष सर्व व्रतों की वृत्ति-प्रवृत्ति ब्रह्मचर्य के ही आधीन हो सकती है। ब्रह्मस्वरूप आत्मा में एकाग्रतारूप ब्रह्मचर्य के बिना व्रतों का पालन नहीं हो सकता; इसलिये जो मुमुक्षु इस ब्रह्मचर्य का पालन-रक्षण करता है और उसे अतिचारों से दूषित नहीं होने देता, वही पुरुष परम प्रमोद को—सर्वोत्कृष्ट आनंद को अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त करता है।

सर्व विकारी भाव और उनके कारणों से रहित होकर शुद्धबुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करना, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस संबंध में कहा है कि:—

निरस्तान्याङ्गरागस्य स्वदेहेपि विरागिणः।
जीवे ब्रह्मणि या चर्या ब्रह्मचर्यं तदीयते॥

जो अपने तथा दूसरे के शरीर में राग रहित है, ऐसे पुरुष को जो आत्मस्वरूप ब्रह्म में चर्या होती है, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं; वह सर्व व्रतों में प्रधान है; इसलिये उसका निरतिचार पालन करने से ही अविनश्वर अनंत आत्मिक सुख प्राप्त होता है।

तत्त्वज्ञानपूर्वक विषय छोड़ने का उपदेश

विवेकशून्य मनुष्य ही कामदेव के वश होता है और उससे दुर्निवार दु:खों का अनुभव करता है। उन दु:खों का अनुभव न करना पड़े, उसके लिये मुमुक्षुओं को विवेकपूर्वक (तत्त्वज्ञानपूर्वक) उसका (काम-विषय का) परित्याग ही कर देना चाहिये। उससे बिल्कुल दूर ही रहना चाहिये। विषय तो महान सर्प के विष समान भयंकर हैं। अरे, सर्प की अपेक्षा कामदेव की भयंकरता महान है।

ब्रह्मचर्य की वृद्धि की भावना का चिंतवन

'जब से संसार है, तभी से अर्थात् अनादिकाल से मैथुन संज्ञा चली आ रही है। सचमुच

अपने चैतन्यस्वरूप की अरुचि और विषयों की रुचि ही मैथुन है। इस मैथुन के कारण ही प्रगट हुए सर्वप्रकार के दु:खों का मुझे अनुभव करना पड़ा! इसलिये उसे धिक्कार है!'—इसप्रकार मैथुनसंज्ञा और उससे होनेवाले दु:ख-अनुभव-के प्रति जो जीव अतिशय विरक्त बुद्धि रखनेवाला है, वह उस पर विजय प्राप्त कर सकता है।

संकल्प-विकल्पों से रहित आत्मसंवेदन से अर्थात् शुद्ध निज ज्ञानस्वरूप के अनुभव से परम सुखरस की उत्पत्ति होती है। परंतु स्त्री आदि परविषयों में सुखबुद्धिपूर्वक उनमें रमण करने की अभिलाषा, वह आत्मा के सुखरस का नाश करने के लिये अग्नि समान है;—विषयों में रमण करने की भावना जागृत होते ही आत्मानुभव का सुख विलीन हो जाता है। अहो, धिक्कार है! आज तक मैं स्त्री आदि विषयों में रमण करने की अभिलाषारूप भावना के ही आधीन रहकर संसार में भटका। आत्मस्वभाव की भावना को भूलकर तथा विषयों की भावना के वशीभूत होकर ऐसा कौन सा दु:ख है कि जो मैंने प्राप्त न किया हो! विषयों की भावना के कारण ही मैंने नरक-निगोद तक के दु:ख भोगे हैं। इसलिये अब तो मैं, स्वाभाविक ज्ञानानंदरूप अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष द्वारा अनुभव में आनेवाले अपने चैतन्यस्वरूप की भावना में ही निमग्न होता हूँ—कि जो चैतन्यस्वरूप मैथुनसंज्ञा के संस्कारों को प्रगट होते ही नष्ट कर देता है।

इसप्रकार भावना करके अपने आत्मस्वरूप के ओर की एकाग्रता बढ़ाना ही ब्रह्मचर्य की वृद्धि का तथा अब्रह्म के नाश का उपाय है।

मोहक्षय का अमोघ उपाय

सम्यग्दर्शन के लिये प्राप्त हुआ स्वर्ण अवसर

भाद्रपद कृष्णा दूज के प्रवचन में पूज्य स्वामीजी ने मोहक्षय का अपूर्व मार्ग दर्शाया था.... अहा जिस उपाय को उल्लासपूर्वक सुनते हुए भी मोह बंधन ढीले होने लगें... तथा जिसका गहरा अंतर्मंथन करने से क्षणभर में मोहक्षय को प्राप्त हो—ऐसा अमोघ उपाय संतों ने दर्शाया है। जगत् में अति विरल तथा अति दुर्लभ ऐसा जो सम्यक्त्वादि का मार्ग, वह इस काल भी संतों के प्रताप से सुगम बना है।.... यह मुमुक्षु जीवों का वास्तव में कोई महान सद्भाग्य हैं। ऐसा अलभ्य अवसर प्राप्त करके संतों की छाया में अन्य सब कुछ भूलकर हम अपने आत्महित के प्रयत्न में कटिबद्ध हों.... यही भावना है।

स्वभावोन्मुखता द्वारा लीन होकर, मोह का क्षय करके जो सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा हुए, उनके द्वारा उपदेशित मोह के नाश का क्या उपाय है ? वह यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं। प्रथम ऐसा बतलाया कि भगवान अरिहंतदेव का आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से शुद्ध है, उनके आत्मा के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, अपने आत्मा की उसके साथ तुलना करने पर ज्ञान और राग का भेदज्ञान होकर स्वभाव और परभाव का पृथक्करण होकर, ज्ञान का उपयोग अंतर स्वभावोन्मुख होता है, वहाँ एकाग्र होने से गुण-पर्याय का आश्रय भी छूट जाता है और गुणभेद का विकल्प छूटकर पर्याय शुद्धात्मा में अंतर्लीन होती है; पर्याय अंतर्लीन होने से मोह का क्षय होता है।

इसप्रकार भगवान अरिहंत के ज्ञान द्वारा मोह के नाश का उपाय बतलाया है। अब वही बात अन्य प्रकार से बतलाते हैं—पहले तो जिसने प्रथम भूमिका में गमन किया है—ऐसे जीव की बात है। सर्वज्ञ भगवान कैसे होते हैं ? मेरा आत्मा कैसा है ? अपने आत्मा का स्वरूप समझकर मुझे अपना हित करना है—ऐसा जिसे लक्ष हो, वह जीव मोहनाश के लिये शास्त्र का अभ्यास किसप्रकार करता है ? सो बतलाते हैं। जीव सर्वज्ञोपज्ञ ऐसे द्रव्यश्रुत को प्राप्त करके अर्थात् भगवान के कहे हुए सच्चे आगम कैसे होते हैं, उसका निर्णय करके फिर उसमें क्रीड़ा करता है.... अर्थात् आगम में भगवान ने क्या कहा है, उसके निर्णय के लिये सतत अंतर्मंथन करता है। द्रव्यश्रुत के

वाच्यरूप शुद्ध आत्मा कैसा है, उसका चिंतन-मनन करना, सो द्रव्यश्रुत में क्रीड़ा है।

द्रव्यश्रुत के रहस्य के गहरे विचार में उतरे, वहाँ मुमुक्षु को ऐसा लगता है कि—अहा! इसमें ऐसी गंभीरता है!! कोई राजा सरागी गुरु के पाँव धोता हो, उसमें जो उस गुरु को आनंद आता है, उसकी अपेक्षा श्रुत के सूक्ष्म रहस्यों को खोलने में जो आनंद आता है, वह तो जगत से भिन्न प्रकार का है। श्रुत के रहस्य के चिंतन का रस बढ़ने पर जगत के विषयों का रस उड़ जाता है। अहो, श्रुतज्ञान के अर्थ के चिंतन द्वारा मोह की गाँठ टूट जाती है। जहाँ श्रुत का रहस्य ज्ञात हुआ कि अहो, यह तो चिदानंद स्वभाव की ओर उन्मुख कराता है... वाह! भगवान की वाणी! वाह, दिगम्बर संत! यह तो मानों ऊपर से सिद्ध भगवान उतरे हों! अहा, भावलिंगी दिगम्बर संत मुनि! वे तो अपने परमेश्वर हैं, वे तो भगवान हैं। भगवान की वाणी और कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादस्वामी, धरसेनस्वामी, वीरसेनस्वामी, जिनसेनस्वामी, नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, समंतभद्रस्वामी, अमृतचंद्रस्वामी, पद्मप्रभस्वामी, अकलंकस्वामी, विद्यानंदस्वामी, उमास्वामी, कार्तिकेयस्वामी - इन सब संतों ने अलौकिक कार्य किया है।

अहा! सर्वज्ञ की वाणी और संतों की वाणी चैतन्यशक्ति के रहस्य खोलकर आत्मस्वभाव की सन्मुखता कराती है। ऐसी वाणी को जानकर उसमें क्रीड़ा करने से, उसका चिंतन-मनन करने से ज्ञान के विशिष्ट संस्कारों द्वारा आनंद का स्फुरण होता है, आनंद के फव्वारे छूटते हैं, आनंद के झरने झरते हैं। देखो, यह श्रुतज्ञान की क्रीड़ा का लोकोत्तर आनंद! अभी तो जिसे श्रुत का भी निर्णय न हो, वह कहाँ क्रीड़ा करेगा? यहाँ तो जिसने भूमिका में गमन किया है अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, उनकी किंचित् प्रतीति की है, वह जीव किस प्रकार आगे बढ़ता है और किसप्रकार मोह का नाश करके सम्यक्त्व प्रगट करता है, उसकी यह बात है। द्रव्यश्रुत में भगवान ने ऐसी बात कही है कि जिसके अभ्यास से आनन्द के फव्वारे छूटते हैं! भगवान आत्मा में आनंद सरोवर भरा है, उसकी सन्मुखता के अभ्यास से एकाग्रता द्वारा आनंद के फव्वारे छूटते हैं। अनुभूति में आनंद के झरने चैतन्य सरोवर में से बहते हैं।

आचार्यदेव ने कहा था कि हे भव्य श्रोता! तू हमारे निजवैभव की-स्वानुभव की इस बात को अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से प्रमाण करना। एकत्वस्वभाव का अभ्यास करने से अंतर में स्वसन्मुख स्वसंवेदन जागृत हुआ, तब उस जीव ने द्रव्यश्रुत के रहस्य को प्राप्त कर लिया। जहाँ ऐसा रहस्य प्राप्त कर लिया, वहाँ अंतर की अनुभूति में आनंद के झरने प्रवाहित होने लगे। शास्त्र के

अभ्यास से, उसके संस्कार से विशिष्ट स्वसंवेदन शक्तिरूप सम्पदा प्रगट करके, आनंद की अनुभूति सहित प्रत्यक्षादि प्रमाण से यथार्थ वस्तुस्वरूप जानने पर मोह का क्षय होता है। अहो, मोह के नाश का अमोघ उपाय – जो कभी निष्फल न हो, ऐसा अचूक उपाय–संतों ने दर्शाया है।

विकल्प से रहित ज्ञान की वेदना कैसी है, उसका अंतर्लक्ष करना, सो भावश्रुत का लक्ष है। राग की अपेक्षा छोड़कर स्व का लक्ष करने से भावश्रुत विकसित होता है और उस भावश्रुत में आनंद का प्रवाह है। प्रत्यक्षसहित परोक्ष प्रमाण हो तो वह भी आत्मा को यथार्थ जानता है। प्रत्यक्ष की अपेक्षा रहित अकेला परोक्ष ज्ञान तो परालम्बी है, वह आत्मा का यथार्थ संवेदन नहीं कर सकता। आत्मा की ओर झुककर प्रत्यक्ष हुआ ज्ञान और उसके साथ अविरुद्ध ऐसा परोक्ष प्रमाण, उससे आत्मा को जानने पर अंतर से आनंद के झरने बहते हैं—यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का तथा मोह को नष्ट करने का अमोघ उपाय है।

अरिहंत भगवान के आत्मा को जानकर, तदनुसार ही अपने आत्मा के स्वरूप की प्रतीति करने से ज्ञानपर्याय अंतर्लीन होकर सम्यग्दर्शन होता है और मोह का क्षय हो जाता है... पश्चात् उसी में विशेष लीनता द्वारा पूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है और सर्व मोह का नाश हो जाता है। समस्त तीर्थंकर भगवंत और मुनिवर इसी एक उपाय से मोह का नाश करके मोक्ष को प्राप्त हुए... और अपनी वाणी द्वारा जगत को भी इसी एक मार्ग का उपदेश दिया। यह एक ही मार्ग है और अन्य मार्ग नहीं है—ऐसा पहले कहा था, और यहाँ गाथा ८६ में कहा है कि—सम्यक् प्रकार से श्रुत के अभ्यास से, उसमें क्रीड़ा करने से उसके संस्कार से विशिष्ट ज्ञान संवेदन की शक्तिरूप सम्पदा प्रगट करने पर आनंद के उद्भेद सहित भावश्रुतज्ञान द्वारा वस्तुस्वरूप को जानने से मोह का नाश होता है। इसप्रकार भावज्ञान के अवलंबन द्वारा दृढ़ परिणाम से द्रव्यश्रुत का सम्यक् अभ्यास, सो मोहक्षय का उपाय है।—इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जो उपाय पहले कहा था और जो अब कहा है—दोनों उपाय भिन्न प्रकार के हैं; कहीं भिन्न–भिन्न दो उपाय नहीं हैं; एक ही उपाय है, जिसे भिन्न–भिन्न शैली में समझाया है। अरिहंतदेव का स्वरूप समझे तो उसमें आगम का अभ्यास आ ही जाता है, क्योंकि आगम बिना अरिहंत का स्वरूप कैसे जानेगा? और सम्यक्–द्रव्यश्रुत का अभ्यास करने में भी सर्वज्ञ की प्रतीति साथ में आ ही जाती है, क्योंकि आगम के मुख्य प्रणेता तो सर्वज्ञ अरिहंतदेव हैं; उनको पहचाने बिना आगम की पहचान नहीं होती।

अब, इसप्रकार अरिहंत की प्रतीति द्वारा अथवा आगम के सम्यक् अभ्यास द्वारा स्वोन्मुख

ज्ञान से आत्मा के स्वरूप का निर्णय करे, तभी मोह का नाश होता है। इसलिये दोनों शैली में मोह के नाश का मूल उपाय तो यही है कि शुद्धचेतना से व्याप्त ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप शुद्ध आत्मा में अंतर्मुख होना चाहिए। यहाँ अकेले शास्त्राभ्यास की बात नहीं है किन्तु 'भावश्रुत के अवलंबन द्वारा दृढ़ किये हुए परिणाम द्वारा सम्यक् प्रकार से अभ्यास' करने को कहा है। भावश्रुत तभी होता है कि जब द्रव्यश्रुत के वाच्यरूप शुद्धात्मा की ओर ज्ञान की उन्मुखता हो—ऐसे दृढ़ अभ्यास से अवश्य सम्यग्दर्शन होता है।

—नमस्कार हो ऐसे सम्यक्त्वसाधक संतों को!

तीन को पहिचाने तो तीन की प्राप्ति हो

(१) स्वभाव का सामर्थ्य

(२) विभाव की विपरीतता और

(३) जड़ से भिन्नता—इन तीन को जो जीव बराबर जानेगा,

वह —

(१) जड़ से पृथक् होगा,

(२) विभाव से विमुख्ख होगा, और

(३) स्वभाव के सन्मुख आयेगा।

— ऐसे तीन प्रकार होने पर जीव को रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

तीर्थंकरों ने एक ही मार्ग का सेवन किया था

'शुद्धात्म प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग अवधारित किया है, कृत्य कर रहे हैं।'

आश्विन् कृष्णा पंचमी के दिन सोनगढ़ के गोगीदेवी आश्रम में नवनिर्मित 'मनफूला स्वाध्याय भवन' का उद्घाटन पूज्य गुरुदेव के शुभ हस्त से हुआ। उस अवसर पर स्वाध्याय भवन में प्रवचनसार गाथा १९९ तथा २०० पर प्रवचन करते हुए पूज्य स्वामीजी ने प्रमोदपूर्वक कहा—अहो! मोक्षमार्ग की उत्तम गाथा आयी है। आचार्यदेव मोक्षमार्ग के प्रमोद से नि:शंकतापूर्वक कहते हैं कि—तीर्थंकरों द्वारा सेवन किये गये मार्ग का हमने अवधारण किया है और कृत्य कर रहे हैं। हम प्रतिक्षण मोक्ष की साधना कर रहे हैं। वाह! आचार्य भगवान और संत कहते हैं कि अंतर में ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव करके हमने मोक्षमार्ग निर्धारित किया है और उसमें हम प्रवृत्ति कर ही रहे हैं।—हमारा आत्मा उल्लसित होकर शुद्धात्मपरिणति में परिणमित हो रहा है और मोक्ष को साध रहा है। हमारा केवलज्ञान का ध्वज फहरा रहा है। केवलज्ञान का झंडा फहराते हुए अल्पकाल में हम मोक्ष चले जायेंगे।

मोक्षमार्ग कैसा है? और मोक्षमार्ग को प्राप्त करके तीर्थंकरों ने कैसे सिद्धपद प्राप्त किया? वह बात आचार्यदेव इस गाथा में कहते हैं—

श्रमणो जिनो तीर्थंकरो, आ रीत सेवी मार्गने
सिद्धि वर्या, नमुं तेमने, निर्वाणना ते मार्गने॥१९९॥

तीर्थंकर भगवंत-केवली भगवंत अथवा अन्य अचरमशरीरी एकावतारी संत - उन सबने कैसा मोक्षमार्ग प्राप्त किया? तो कहते हैं कि शुद्धात्मतत्त्व में प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग एक ही है, उस एक ही विधि से मोक्षमार्ग की साधना करके सर्व जीव सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं और होंगे। विदेहक्षेत्र में इस समय सीमंधर भगवान आदि बीस तीर्थंकर विराजमान हैं तथा अन्य लाखों केवली भगवंत विराज रहे हैं—वे सब चरमशरीरी भगवंत, तथा कुन्दकुन्दाचार्यादि अचरमशरीरी संत-भगवंत जो एक ही भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे—उन सबने शुद्धात्मतत्त्व में प्रवृत्तिरूप एक ही विधि से मोक्षमार्ग की साधना की है। शुद्धात्मा की ओर उन्मुख होने से निर्विकल्प वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, अशुद्धता का व्यय होता है और शुद्धात्मा की ध्रुवता रहती है—ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक मोक्षमार्ग है। अभी तक अनंत सिद्ध हुए हैं—कितने? तो कहते हैं कि—छह महीना

आठ समय में कुल छह सौ आठ जीव ढाई द्वीप में से मोक्ष जाते हैं; इससे कम भी नहीं और अधिक भी नहीं—ऐसे अनंत छह महीने बीत चुके हैं और अनंत छह सौ आठ जीव मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं। जगत में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं। मनुष्यों में तो संख्यात ही सम्यग्दृष्टि हैं परंतु अन्य तीनों गतियों में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं। जगत के जिन जीवों ने सिद्धपद की साधना की या अब साध रहे हैं और भविष्य में साधेंगे, उन समस्त मुमुक्षु जीवों ने शुद्धात्मा में प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त करके ही मोक्ष प्राप्त किया है, प्राप्त कर रहे हैं और करेंगे। आचार्यदेव प्रमोदसहित कहते हैं कि अहो! ऐसे शुद्ध मोक्षमार्ग को नमस्कार हो... उस मार्ग को साधनेवाले संतों को नमस्कार हो।

देखो, आज के मंगल दिवस पर यह मोक्षमार्ग की अपूर्व बात! एक ही मोक्षमार्ग है, दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धात्म-प्रवृत्ति ही मोक्षमार्ग है और राग, मोक्षमार्ग नहीं है। स्वावलम्बी पर्याय ही मोक्षमार्ग है और परालम्बी पर्याय मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धात्मा में प्रवृत्ति ही मोक्षमार्ग है और परद्रव्य में प्रवृत्ति वह मोक्षमार्ग नहीं है। अहो, ऐसा एक ही मोक्षमार्ग है। ऐसे मार्ग की तीर्थंकरों ने स्वयं साधना की और समवसरण में भी वे यही मार्ग कह रहे हैं; गणधर उसे झेल रहे हैं, संत उसका सेवन कर रहे हैं और इंद्र आदर कर रहे हैं। मोक्ष के लिये मुमुक्षु को यह एक ही मार्ग है।

विशेष विस्तार से बस होओ... इस ऐसे मोक्षमार्ग में वर्तते हैं... मार्ग का निर्णय किया है और कार्य सध रहा है। इस प्रकार स्वयं शुद्धात्मा में वर्तते हुए आचार्यदेव सिद्धों को भाव नमस्कार करते हैं। कैसा है यह भाव नमस्कार? जिसमें भाव्य और भावक का भेद नहीं है, परोन्मुखता नहीं है, विकल्प नहीं है, अंतर में स्वयं ही शुद्धात्मा में प्रवर्तमान हैं, यही शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग को अभेद नमस्कार है। अहो! आचार्यदेव मार्ग के प्रमोद से निःशंकतापूर्वक कहते हैं कि तीर्थंकरों द्वारा सेवन किया गया मार्ग हमने अवधारित किया है... कृत्य किया जा रहा है... अर्थात् हम प्रतिक्षण मोक्ष को साध रहे हैं। अहो, मोक्षमार्ग की उत्तम गाथा आयी है। आचार्य भगवान और संत कहते हैं कि हमने अंतर में ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव करके मोक्षमार्ग निर्धारित किया है और उसमें हम प्रवृत्ति कर ही रहे हैं। हमारा आत्मा उल्लसित होकर शुद्धात्मपरिणति में परिणमित हो रहा है और मोक्ष को साध रहा है। ऐसे मोक्षमार्ग में हम निश्चिंत हैं, निःशंक हैं। किसी और से पूछना पड़े, ऐसी शंका हमें नहीं है। बीच में किंचित् विकल्प आये तो वह हमारे अनुभव का विषय नहीं है, उसमें हमारी प्रवृत्ति नहीं है; हमने तो एक शुद्धात्म-प्रवृत्तिरूप मार्ग को ही अवधारित किया है और भगवंतों ने भी यही मार्ग साधा था—ऐसा हम अपने स्वानुभव की निःशंकता से जानते हैं। ऐसे मार्ग

को साधकर हम भी मोक्ष में चले जायेंगे।

अब यह ज्ञेयतत्त्व का अधिकार पूर्ण करते हुए अंतिम गाथा में आचार्यदेव प्रतिज्ञा का निर्वहन करते हैं। प्रारंभ में मंगलाचरण में (पाँच गाथाओं में) प्रतिज्ञा की थी कि वीतरागभावरूप साम्य को, निर्विकल्प उपयोग को-शुद्धोपयोग को मैं अंगीकार करता हूँ; वह प्रतिज्ञा यहाँ, मोक्षमार्गभूत शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप स्वयं परिणमित होकर आचार्यदेव ने पूर्ण की है—

अे रीत तेथी आत्मने, ज्ञायक स्वभाव जाणी ने,
निर्ममपणे रही स्थित आ, परिवर्जुं छुं हूँ ममत्वने॥ २००॥

सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि का सार क्या? कि शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग ही दिव्यध्वनि का सार है। अहो, यह तो सर्वज्ञ परमात्मा का सेवन किया हुआ आत्मस्वभाव का मार्ग है। आत्मा ज्ञायकस्वभावी है—स्वभाव से आत्मा ज्ञायक ही है—ऐसा जानकर, अनुभव करके निर्ममत्व में स्थित रहकर अर्थात् शुद्धात्मा में स्थित रहकर ममत्व को छोड़ता है—वह साक्षात् मोक्षमार्ग है।

अब देखो, टीका कितनी सुंदर है!

यह मैं मोक्षाधिकारी, ज्ञायकस्वभावी आत्मतत्त्व के परिज्ञानपूर्वक, ममत्व के त्यागरूप एवं निर्ममत्व के ग्रहणरूप विधि द्वारा सर्व आरम्भ से (उद्यम से) शुद्धात्मा में प्रवर्तन करता हूँ, क्योंकि अन्य कृत्य का अभाव है। शुद्धात्मा में प्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य कार्य का मुझमें अभाव है।

आचार्यदेव कहते हैं कि—मैं मोक्ष का अधिकारी हूँ, संसार की चारों गतियों का अब परित्याग किया है। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ पहले भेड़-बकरियाँ चराते थे। उन्हें बुलाकर परीक्षा करने के लिये रानी ने पूछा कि किसलिये आये हो? तो कहने लगे राज्य चलाने आया हूँ—मैं राज्य का अधिकारी हूँ। उन्होंने पुण्य के बल से वैसा कहा था; उसीप्रकार यहाँ पवित्रता के बल से साधक संत कहते हैं कि हम मोक्ष के अधिकारी हैं, केवलज्ञान का साम्राज्य लेने आये हैं। उन्हें अपनी पवित्रता का विश्वास है। अंतर से पवित्रता प्रगट हुई, वहाँ प्रतीति हुई कि —अहो! अब हम संसार में डूबनेवाले नहीं हैं, अब तो हम अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी हैं। सौ में से अट्ठानवें नौकाएँ डूब जायें और दो तैरती रहें, वहाँ पुण्यवान को विश्वास है कि मेरी नौका नहीं डूब सकती... उसीप्रकार साधक धर्मात्मा को अपनी पवित्र परिणति के बल से विश्वास है कि मेरा आत्मा मोक्ष का अधिकारी है, भव का भाव मेरे ज्ञायकस्वभाव में नहीं है; मैं तो ज्ञायकभाव ही हूँ—ऐसा मैंने जाना है और अब सर्व उद्यम से उसी में प्रवर्तन करता हूँ; अब हमारी

नौका संसार में नहीं डूब सकती; हम मोक्ष को साध रहे हैं। अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थों में सर्वत्र हमें निर्ममत्व ही है। शुद्धात्मा के ज्ञानपूर्वक ममत्व का त्याग होता है; ऐसे मार्ग द्वारा मोह को उखाड़कर शुद्धात्मा को अत्यंत निष्कंपरूप से प्राप्त करता हूँ। हमारा केवलज्ञान का ध्वज फहरा रहा है। केवलज्ञान का ध्वज फहराते हुए हम अल्प काल में मोक्ष चले जायेंगे।

सुभाषित काव्य

(श्री राजचंद्रजी)

देखत भी नवयौवना, लेश न विषय निदान,
गिने काष्ट की पुतली, वह भगवान समान।

दोषमयी सब जगत की रमणी नायकरूप,
वो तजतें सब तज दिया केवल शोकस्वरूप।

एक विषय को जीतते जीत लिया सब संसार,
नृप जीतत सब जित लिये दल-पुर-अर अधिकार,

विषयरूप अंकूर से, टले ज्ञान अरु ध्यान,
लेश मदिरापान से छाकत ज्यों अज्ञान।

सुंदर शियल सुर तरु मन वाणी अरु देह,
जो गुणिजन पालन करे अनुपम फल वे लेह।

पात्र बिना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान,
पात्रतार्थ नित सेइये ब्रह्मचर्य मतिमान।

वस्तुस्वभाव की मर्यादा

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता। अपना ही कार्य कर सकता है। निमित्त-नैमित्तिक भाव दोनों अपने-अपने अवसर पर निज उपादान-उपादेयभाव को धारण करते हैं, जो स्व से हैं पर से नहीं हैं ऐसा जानना सम्यक् अनेकांत है।

उपादान निश्चय जहाँ तहँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परवान विधि विरला बूझे कोई॥

निमित्त जुटाने नहीं पड़ते; कार्य काल में वे होते ही हैं। निमित्ताधीन कार्य मानना वस्तु की निजशक्ति का घोर अपमान है। शुभभाव से पुण्य होता है किंतु पुण्य से आत्महितरूप धर्म मानना और परद्रव्यादि से अपना भला-बुरा मानना, वह वस्तु नियम से १०० टका विरुद्ध है। मैं पर का कुछ कर सकता हूँ, मैं पर के काम में आता हूँ—ऐसा अभिप्राय दो द्रव्य में एकत्व माननेवाले मिथ्यादृष्टि का है। पराश्रय से भी कल्याण होता है, कभी स्वाश्रय से भी कल्याण होता है—ऐसा निश्चय मिथ्या अनेकांतरूप मिथ्यात्व है, किंतु स्वद्रव्य के आश्रय से ही अपना भला होता है, परद्रव्यादिक के आलंबन से कभी आत्महितरूप भला नहीं होता—ऐसा (स्वसन्मुख होकर) निश्चय करना, वह सम्यक् अनेकांत है और वही आत्महितरूप सम्यक्एकांत है।

जिनेन्द्रदेवों ने जिनशासन में ऐसा कहा है कि पूजादि में और व्रत सहित होय, सो तो पुण्य है तथा मोह-क्षोभरहित ऐसा आत्मा का परिणाम, वह धर्म है (भावपाहुड़ गाथा ८३) सम्यग्दृष्टि को आंशिक वीतरागता होती है, वहाँ शुभ परिणाम को भी उपचार करि धर्म कहिये। (श्री पंडित जयचंद्रजी)

भगवान अरिहंतों का आदेश है कि

ज्ञान ही मोक्ष का कारण है.... राग, बंध का ही कारण है

आचार्य भगवान कहते हैं कि—अरे जीवों! जो जीव वैराग्यपरिणत है, वही कर्मबंधन से छूटता है और रागी जीव कर्मों से बँधता है—ऐसा जिन भगवान का उपदेश है, इसलिये तुम कर्म में न रचे रहो, शुभराग की प्रीति न करो; शुभराग को धर्म का या मोक्ष का साधन न मानो। धर्मात्माओं को शुभराग के प्रति भी वैराग्य है; वैराग्य ही धर्मात्मा की सम्पत्ति है। शुभराग को भी धर्मी जीव अपनी सम्पत्ति नहीं मानते। जिसे राग की रुचि है, जो राग को धर्म का साधन मानता है, वह जीव राग के कर्तृत्व में अटका है, उसके वैराग्य का एक कण भी जागृत नहीं हुआ है। जो राग का कर्ता हो, उसे वैरागी कैसे कहा जा सकता है? राग का कर्ता हो, वह तो संसार की प्रीति रखनेवाला है और वह भव में भ्रमण करने के कर्म बाँधता है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चैतन्य को और राग को अत्यन्त भिन्न जानते हुए ज्ञान के रसिक हैं तथा राग के प्रति विरक्त हैं, उन्हीं को सच्चा वैराग्य है। समस्त संसार के कारणरूप राग के प्रति उन्हें वैराग्य वर्तता है। अज्ञानी जीव राजपाट छोड़कर, द्रव्यलिंगी साधु होकर पंचमहावतों का पालन करता हो, परंतु यदि उसके अभिप्राय में शुभवृत्ति के अवलंबन से लाभ होने की बुद्धि पड़ी है तो उसे किंचित् वैराग्य नहीं कहते। वह अनंत संसार के कारणरूप अनंतानुबंधी राग का सेवन कर रहा है, प्रतिक्षण अनंत कर्मों का बंध कर रहा है। धर्मात्मा गृहस्थ घरबार में रहकर व्यापार-धंधा के मध्य में रहे हों और शुभाशुभराग भी वर्त रहा हो, तथापि उनका ज्ञान उस संयोग से तथा राग से बिल्कुल विरक्त है; इसलिये वे धर्मात्मा गृहस्थदशा में रहने पर भी वैरागी हैं और प्रतिक्षण अनंत कर्मों से छुटकारा पा रहे हैं। इसीलिये कहा है कि—

जीव रागी बाँधे कर्म को, वैराग्य गत मुक्ति लहे।
ये जिनतणो उपदेश है नहिं, राच तुं कर्मो विषे॥१५०॥

देखो, देखो, यह भगवान के उपदेश का आदेश! भगवान का साक्षात् उपदेश सुनकर श्री आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य! राग से रंगा हुआ जीव तो कर्मबंध करता ही है, किंतु शुभराग से भी कर्मबंध करके जीव संसार में परिभ्रमण करता है और विरक्त जीव कर्मों से छूटता है—ऐसा भगवान का वचन है, उसे जानकर तू राग में न रचा रह! कर्म के कारणों की प्रीति छोड़! राग का एक कण भी जीव को हितरूप नहीं है; वह आदरणीय नहीं है परंतु उपेक्षणीय है—ऐसा समझ।

राग, वह बंधभाव ही है और सम्यग्दर्शनादि वीतरागभाव ही अबंधभाव है; बंधभाव तथा अबंधभाव में किंचित् एकता नहीं है। शुभराग किंचित्मात्र मोक्ष का कारण तो होता है ?—तो कहते हैं नहीं; वह बंध का ही कारण होता है और मोक्ष का कारण नहीं होता—ऐसा अनेकांत है। धर्मात्मा की भूमिका में वर्तता हुआ शुभराग भी बंध का ही कारण है, मोक्ष का कारण तो राग से भिन्न परिणमित होनेवाला ऐसा ज्ञान ही है—ऐसा जानकर, हे भव्य जीव! तू ज्ञानस्वभाव में ही रत हो और राग की रुचि छोड़। राग की जिसे रुचि है, उसे कर्मबंधन की ही रुचि है, उसे कर्म से छूटने की रुचि नहीं है। जिसे कर्म से छूटने की रुचि हो, उसे बंध के कारण कैसे रुचेंगे ? जो राग को धर्म का साधन मानता है, वह मिथ्यादृष्टि जीव, राग का ही पोषक है तथा धर्म का अनाराधक है, विराधक है, संसार के कारण का ही वह सेवन कर रहा है।

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद् बंध साधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥१०३॥

मोक्षमार्ग के प्रधान उपदेशक ऐसे भगवान सर्वज्ञदेवों ने शुभ या अशुभ समस्त कर्मों का बिना किसी अंतर के निषेध किया है परंतु ऐसा नहीं है कि अशुभ का तो सर्वथा निषेध किया हो और शुभ को किंचित् आदरणीय भी कहा हो! धर्मी को भी अमुक भूमिका में शुभ होता है, वह अलग बात है, परंतु उस शुभ को भी भगवान ने बंध का ही कारण कहकर, मोक्षमार्ग में से उसका निषेध ही किया है तथा उस राग से रहित ऐसा जो ज्ञान, वही मोक्ष का कारण है—ऐसा भगवान ने आदेश दिया है।

देखो, यह मोक्षमार्ग की साधना के लिये भगवान का आदेश! मुनि को या श्रावक को भी जितना ज्ञान परिणमन है, उतना ही मोक्षमार्ग है, जितना शुभ या अशुभराग है, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है।

इस प्रकार मोक्षमार्ग से समस्त कर्म का निषेध है।

प्रश्न : यदि ऐसा है तो मुनियों तथा श्रावकों को किसकी शरण रही ? शुभराग का भी मोक्षमार्ग में से निषेध ही किया, तो अब निष्कर्म अवस्था में किसकी शरण रही ? अब किसके आधार से मोक्षमार्ग को साधें ? उसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि अरे जीव! सुन! शुभ-अशुभ दोनों कर्मों से रहित अवस्था में तो धर्मात्मा चैतन्यरस के अमृत का निर्विकल्प अनुभव करते हैं, वे कहीं अशरण नहीं हो जाते, परंतु चिदानन्दस्वभाव के आश्रय से ज्ञानमयभावरूप परिणमित होते हुए परमज्ञानामृत का पान करते हैं।

समयसार नाटक में इस सम्बन्ध में शंका-समाधान किया है—

शिष्य कहे स्वामी तुम करणी अशुभ शुभ,
कीनी है निषेध मेरे संशय मनमांही है;
मोक्ष के सधैया ज्ञाता देशविरति मुनीश,
तिनकी अवस्था तो निरालम्ब नांही है॥

शिष्य कहता है—हे स्वामी! आपने अशुभ तथा शुभ दोनों क्रिया का मोक्षमार्ग में से निषेध किया है, इसलिये मेरे मन में संशय उत्पन्न होता है कि—मोक्ष के साधक ज्ञानी, देशव्रती श्रावक व मुनि—उनकी अवस्था निरालम्बी तो नहीं है तो फिर वे किसके अवलम्बन से मुक्ति को साधेंगे? तब श्रीगुरु समाधान करते हैं कि—

कहे गुरु-करम को नाश अनुभौ अभ्यास,
ऐसो अवलम्ब उनहीं को उन माहीं है;
निरुपाधि आतम समाधि सोई शिव रूप
और दौड़धूप पुद्गल परछांही है॥

श्रीगुरु कहते हैं कि—अनुभव के अभ्यास द्वारा कर्म का नाश होता है; शुभराग के अभ्यास से कहीं कर्म का नाश नहीं होता; कर्म का नाश तो रागरहित चैतन्य के अनुभव के अभ्यास से ही होता है। ज्ञानी, श्रावक व मुनि पुण्य-पाप का अवलंबन छोड़कर अपने ज्ञान में ही स्वानुभव करते हैं, उस स्वानुभव में अपना अवलंबन अपने में ही है, शुभ या अशुभ की उपाधि से पार निरुपाधि आत्म समाधि अर्थात् राग-द्वेष-मोह रहित निर्विकल्प आत्मध्यान ही मोक्षरूप है, उसके अवलंबन से ही धर्मात्मा मोक्ष को साधते हैं; इसके अतिरिक्त दूसरी सब दौड़-धूप तो पुद्गल की छाया समान है। समिति, व्रतादि शुभक्रिया तो आस्रव ही है, उससे साधु को या श्रावक को कर्म निर्जरा नहीं होती, निर्जरा तो शुद्धात्मा के स्वानुभव से ही होती है।

श्रावकों को भी कहीं राग की शरण नहीं है। राग का अवलंबन छोड़कर चैतन्य के अवलंबन से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन होने से मोक्षमार्ग सधता है और परम शांत निराकुल स्वाद का वेदन होता है। पहले ज्ञान, राग में वर्तता था, उसके बदले अब राग से छूटकर स्वयं ज्ञान में ही रमण करने लगा, वहाँ परम वीतरागी अमृत का आस्वादन करता है—ऐसा ज्ञान ही मुनियों को या श्रावकों को शरणभूत है। देखो, यह भगवान का कहा हुआ धर्म! ऐसा धर्म ही शरणरूप है तथा वही भगवान का आदेश है। राग करने का आदेश भगवान का क्यों होगा? राग तो बंध का कारण है,

इसलिये उसका तो भगवान ने निषेध किया है, अर्थात् वह धर्म नहीं है—ऐसा भगवान ने कहा है और राग से अलिप्त रहकर ज्ञान-ज्ञान में ही प्रवर्तमान रहे, वह धर्म है। स्वभाव में रमण करे और राग से अलिप्त रहे, ऐसा ज्ञान ही महान् शरणरूप है। वह ज्ञान आकुलता रहित परम शान्तरस के स्वाद से भरपूर है। उस ज्ञान में राग से निवृत्ति तथा स्वभाव में प्रवृत्ति है; वह विभाव से विमुख है तथा स्वभाव में सन्मुख है। ऐसी ज्ञान परिणति के आश्रय से ही श्रावक धर्म या मुनिधर्म होता है। अज्ञानी लोग ऐसा जानते हैं कि बाह्य प्रवृत्ति के आधार से या शुभराग के आधार से ही मुनिपना या श्रावकपना टिकता है! परंतु यहाँ कहते हैं कि भाई! ऐसा नहीं है; मुनियों या श्रावकों को बाह्य प्रवृत्ति की या राग की शरण नहीं है; सर्व राग से पार अकेले चैतन्य के आश्रय से ही मोक्षमार्ग सधता है। रागप्रवृत्ति से छूटकर उपयोग अंतर्मुख हुआ, वहाँ धर्मात्मा परम आनंद का साक्षात् अनुभव करता है—राग में तो उस आनंद की गंध भी नहीं है। रागरहित ज्ञान के परिणमन में जो निराकुल परम आनंद का अनुभव है, उसे ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानी तो राग के आकुल स्वाद को ही जानता है, किंतु निराकुल शांतरस का अनुभव नहीं करता। राग की ही शरण तथा राग का ही अवलंबन मानकर उसी में वह लीन हो रहा है, इसलिये वह कषाय में ही वर्तन करनेवाला है। राग से भिन्न चिदानंद तत्त्व को जानकर उसमें ज्ञानोपयोग को लगाकर जिसने उसकी शरण ली, उसी ने वास्तव में अरिहंत, सिद्ध, साधु तथा धर्म की शरण ली है। जिसने राग से लाभ माना, उसने तो राग की ही शरण ली है, उसने वीतराग की शरण नहीं ली। श्रावक या मुनिवर समस्त धर्मात्मा भेदज्ञान द्वारा राग को भिन्न जानकर, ज्ञान का ही मोक्ष के कारणरूप में सेवन करते हैं। इसप्रकार सर्व कर्मों का निषेध करके स्वभाव के आश्रय से ज्ञानमय परिणमन ही मोक्ष का साधन है—ऐसा भगवान का आदेश है।

पद्मनाभ तीर्थंकर वर्तमान में कहाँ हैं ?

आनेवाली चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर श्री पद्मनाभस्वामी हैं... वे साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाद तीर्थंकर होंगे। इस समय वे कहाँ हैं ?—श्रेणिक राजा के पेट में हैं... श्रेणिकराजा का जो आत्मा है, उसकी शक्ति के गर्भ में पद्मनाभ तीर्थंकर अनंत सर्वज्ञशक्तिसहित विराजमान हैं... वे आनेवाली चौबीसी में साक्षात् सर्वज्ञरूप में प्रगट होंगे। प्रत्येक आत्मा की शक्ति के गर्भ में परमात्मपना विद्यमान है; उसी में से परमात्मपद का अवतार होता है, कहीं बाहर से वह नहीं आता।

विश्ववंदनीय—धर्मसाम्राज्यनायक
आदि तीर्थंकर
भगवान श्री ऋषभदेव

[भगवान श्री ऋषभदेव ने श्रीमान नाभिराय और मरुदेवी माता के घर जन्म लिया, तब सौधर्म इंद्र आदि ने स्वर्ग से यहाँ आकर जन्म कल्याणक महोत्सव मनाने के लिये पांडुक वन में जाकर पवित्र जल से भगवान का अभिषेक किया था। बाद में क्या वृत्तांत हुआ था, इसका वर्णन भगवान श्री जिनसेन आचार्य कृत महापुराण के आधार से यहाँ दिया जाता है।]

गतांक नंबर २३८ से चालू

जिससमय अनेक देवांगनाऐं ताल सहित नाना प्रकार की नृत्य कला के साथ नृत्य कर रही थीं, उस समय इंद्रादि और धरणेन्द्रों ने हर्षित होकर मेरुपर्वत पर क्षीरसागर के जल से जिनके जन्माभिषेक का उत्सव किया था, वे परम पवित्र तथा तीनों लोकों के गुरु श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र सदा जयवंत हों। मेरुपर्वत के मस्तक पर स्फुरायमान होता हुआ जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक का वह जल प्रवाह हम सबकी रक्षा करे, जिसे कि इंद्रों ने बड़े आनंद से, देवियों ने आश्चर्य से, देवों के हाथियों ने सूंड ऊँचा उठाकर बड़े भाव से, चारणऋद्धिधारी मुनियों ने एकाग्रचित्त होकर बड़े आदर से और विद्याधरों ने यह क्या है, ऐसी जिज्ञासा (शंका) करते हुए देखा था।

जिनका अभिषेक किया जा चुका है, ऐसे पवित्र शरीर धारण करनेवाले भगवान ऋषभदेव के शरीर में लगे हुए जलकणों को इंद्राणी ने स्वच्छ एवं निर्मल वस्त्र से पोंछा। बाद में इंद्राणी भगवान के शरीर पर विलेपन, ललाट पर तिलक, मस्तक पर मुकुट, नेत्रों में अंजन का संस्कार और जन्म से ही छिद्र सहित कान में मणिमय कुंडल पहिनाये थे। इसप्रकार भगवान को अनेक वस्त्राभूषण से अलंकृत कर इंद्राणी अपने को धन्य समझने लगी। इंद्र ने भी भगवान के उस समय की रूप संबंधी शोभा देखी परंतु दो नेत्रों से देखकर संतुष्ट नहीं हुआ, इसलिये उसने विक्रिया शक्ति से हजार नेत्र बनाकर भगवान का रूप देखा; तदनंतर परम आनंद से अष्टप्रकार की पूजा की और अनेक प्रकार से स्तुति करके उत्सव के साथ-साथ अयोध्या वापिस लौटा। देव बड़े भारी हर्ष, गीत

नृत्य और जय जय शब्द की घोषणा करते हुए आकाशरूपी आँगन को उलंघकर शीघ्र ही अयोध्यापुरी आ पहुँचे। करोड़ों पुरुषरूपी अमूल्य महा रत्न उत्पन्न करनेवाली अयोध्यानगरी के पास सरयू नदी स्थित थी। तत्पश्चात् इंद्र ने भगवान ऋषभदेव को लेकर कुछ देवों के साथ महाराजा नाभिराय के घर में प्रवेश किया और भगवान ऋषभदेव को सिंहासन पर विराजमान किया। मायामयी निंद्रा दूर कर इंद्राणी के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुई माता मरुदेवी भी हर्षित चित्त होकर देवियों के साथ-साथ तीनों जगत के स्वामी भगवान ऋषभदेव को देखने लगी। उस समय वह ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसे कि लाल सूर्य से पूर्व दिशा सुशोभित होती है। भगवान के माता-पिता अतिशय प्रसन्न होते हुए इंद्र को देखने लगे, बाद में महामूल्य आभूषणों से उन जगत्पूज्य माता-पिता की इंद्र ने पूजा की और परम भक्ति के साथ कहने लगा कि आज आपका घर हम लोगों के लिये जिनालय के समान पूज्य है। इसप्रकार इंद्र ने माता-पिता की स्तुति कर उनके हाथों में भगवान को सौंप दिया। माता-पिता ने इंद्र की अनुमति प्राप्त कर अनेक उत्सव करनेवाले नगर निवासी लोगों के साथ साथ बड़ी विभूति से भगवान का फिर भी जन्मोत्सव मनाया। इस तरह सारे संसार को आनंदित करनेवाला वह महोत्सव जैसा मेरुपर्वत पर हुआ था, वैसा ही अयोध्यानगर में हुआ। माता-पिता ने दान देकर भी सबकी इच्छाएँ पूर्ण की थी, इसलिये कोई निर्धन न रहा था। बाद में इंद्र ने नृत्य-गान आदि द्वारा बाल-प्रभु के पास अपनी भक्ति प्रदर्शित की थी और आनंद नामक नाटक किया था।

ये भगवान जगत भर में ज्येष्ठ हैं और जगत का हित करनेवाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे ही, इसलिये ही इंद्रों ने उनका वृषभदेव नाम रखा था। सुंदर आकार को धारण करनेवाले वे भगवान, माता-पिता के मन में संतोष बढ़ाते हुए देव बालकों के साथ रत्नों की धूलि में क्रीड़ा करते थे। मति, श्रुत, अवधि ये तीनों ही ज्ञान भगवान को उत्पन्न (जन्म से) हुए थे। इसलिये शिक्षा के बिना ही समस्त विद्याओं में, कलाओं में प्रशंसनीय कुशलता को और चतुराई को प्राप्त हो गये थे। उनको क्षायिक सम्यग्दर्शन था और स्वभाव से ही शास्त्र ज्ञान था। इसलिय उनके परिणाम बहुत ही शांत रहते थे। चरमशरीर को धारण करनेवाले भगवान दीर्घदर्शी थे, दीर्घ आयु (८४ लाख पूर्व) दीर्घ भुजा, दीर्घ नेत्र, और दृढ़ विचार के धारक थे। लिपि विद्या, गणित विद्या तथा संगीत आदि, कला का दूसरों को अभ्यास कराते थे। कभी अपने दर्शन करने के लिये आई हुई प्रजा का मधुर और स्नेहयुक्त अवलोकन द्वारा तथा मंद हास्य और आदरसहित संभाषण के द्वारा सत्कार करते थे।

इसप्रकार देवकुमारों के साथ अपने-अपने समय के योग्य क्रीड़ा और विनोद करते हुए भगवान ऋषभदेव सुखपूर्वक रहते थे।

यौवन अवस्था पूर्ण होने पर भगवान का शरीर बहुत मनोहर हो गया था तो भी परम औदारिकशरीर धारण करनेवाले भगवान संसार में सहज वैराग्यरूप रहते थे। उनका विषय राग अत्यंत मंद था, फिर भी महाराज नाभिराज ने भगवान ऋषभदेव और इंद्र की अनुमति से सुशील, सुंदर लक्षणोंवाली और सती ऐसी दो कन्याऐं पसंद कीं। वे दोनों कन्याऐं कच्छ और महाकच्छ की बहिनें थीं, बड़ी ही शांत और यौवनवंती थीं और यशस्वी और सुनंदा उनका नाम था। उन्हीं दोनों कन्याओं के साथ नाभिराज ने भगवान का विवाह कर दिया। इसप्रकार उन रानियों के साथ भोगों को भोगते हुए जगद्गुरु भगवान का बड़ा भारी समय बीत गया था।

किसी समय यशस्वती महादेवी राजमहल में सो रही थी, सोते समय उसने स्वप्न में पर्वत, सूर्य, चंद्र आदि देखे। प्रभात के समय स्नानादि कर अपने पति के पास स्वप्न फल पूछने के लिये गई। ऋषभदेव ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि हे देवी! तेरे अनिंद्य उत्तम वैभव को धारण करनेवाला चक्रवर्ती पुत्र होगा। वह महिमावंत आश्चर्य का धारक, महाविवेकी चरमशरीरी होकर संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाला होगा। यह सुनकर यशस्वती बहुत प्रसन्न हुई। चैत्र कृष्णा नवमी के दिन यशस्वती महादेवी ने सम्राट के शुभ लक्षणों से शोभायमान ज्येष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया, पुत्र का जन्म होने पर माता-पिता, दादा-दादी और सब परिवार के जन परम हर्ष को प्राप्त हुए। सारी अयोध्या उत्सव सहित हो रही थी और श्री ऋषभदेव ने सबको भारी दान दिया था। समस्त भरतक्षेत्र के अधिपति होनेवाले उस पुत्र को भरत नाम से पुकारा था। उसीसमय भरत पुत्र के नाम के कारण यह क्षेत्र भारत नाम से प्रसिद्ध हुआ। बालक दिनों दिन सुंदरता और कलाओं में आगे बढ़ता जाता था और सबको आनंद उत्पन्न करता था। विधि को जाननेवाले भगवान ऋषभदेव ने अनुक्रम से अपने उस पुत्र के अन्नप्राशन चौल (मुंडन) और उपनयन जनेऊ आदि संस्कार स्वयं किये थे।

भरतकुमार ने युवावस्था प्राप्त की, उसके चरण कमलों में चक्र, छत्र, तलवार दंड रत्न आदि चौदह रत्नों के चिह्न बने हुए थे। और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों ये चौदह रत्न, लक्षणों से, छल से भावी चक्रवर्ती की पहिले से ही सेवा कर रहे हों।

चक्रवर्ती के क्षेत्र में रहनेवाले समस्त मनुष्य और देवों में जितना बल होता है, उससे कई

गुना अधिक बल चक्रवर्ती की भुजाओं में था। दूसरी जगह नहीं पाई जानेवाली उसकी उत्कृष्ट रूप संपदा और कलाओं में कुशलता देखकर लोग उसके पूर्वभव संबंधी पुण्य संपदा की प्रशंसा करते थे। सुंदर शरीर, नीरोगता, ऐश्वर्य, धनसंपत्ति, सुंदरता, बल, आयु, यश, बुद्धि, सर्व प्रियवचन और चतुरता आदि इस संसार में जितने कुछ (लौकिक) सुख के कारण हैं, वह सब अभ्युदय कहलाता है और वह सब संसारी जीवों के पुण्य के उदय से प्राप्त होता है। जिन्हें तीर्थंकर पदवी प्राप्त होनेवाली है, ऐसे भगवान ऋषभदेव नेत्रों के आनंद देनेवाले अत्यंत सुंदर और असाधारण भरत के मुख को देखते हुए, कानों को सुख देनेवाले तथा विनय सहित कहे हुए उसके मधुर वचनों को सुनते हुए, प्रणाम करने के बाद उठे हुए भरत का बारबार आलिंगन कर उसे अपनी गोद में बैठालते हुए परम संतोष को प्राप्त होते थे।

इसप्रकार भगवान ऋषभदेव के यशस्वती महादेवी से भरत के पीछे जन्म लेनेवाले निन्यानवें पुत्र हुए। वे सभी पुत्र चरमशरीरी तथा बड़े प्रतापी थे। भगवान को ब्राह्मी नाम की एक पुत्री भी थी। [सर्वप्रकार के शुभाशुभराग को मलिन अशुचि-विपरीत और दु:खरूप माननेवाले स्वसन्मुख होकर त्रैकालिक एक ज्ञायकस्वरूप को ही उपादेय आश्रय करनेयोग्य माननेवाले ज्ञानी को हेयबुद्धि से जो पुण्य बँधते हैं, उस सभी पुण्य को प्रथम से ही वे हेय मानते थे, तभी तो लोकोत्तर पुण्य उस पुण्य पुरुष के समीप आते हैं, मिथ्यादृष्टि को तो शास्त्र में पाप जीव कहा है, उसके पुण्य को पापानुबंधी हीन पुण्य कहा है]।

भगवान ऋषभदेव की द्वितीय पत्नी सुनंदा के देव के समान बाहुबली नाम का पुत्र तथा सुंदरी नाम की पुत्री हुई थी। बाहुबली चौबीस कामदेवों में से पहले कामदेव थे। सब राजकुमारों में तेजस्वियों में भी तेजस्वी, भरत सूर्यसम और बाहुबली चंद्रमा के सम शोभित होते थे। ब्राह्मी पुत्री दीप्ति के समान और सुंदरी चांदनी के समान सुशोभित होती थी वे दोनों कन्यायें बुद्धिमती थीं, विनीत थीं, सुशील थीं, रूपवती थीं और मानिनी स्त्रियों के द्वारा भी प्रशंसनीय थीं। किशोर अवस्था में दोनों कन्याओं ने विनय के साथ भगवान के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया। दूर से ही जिनका मस्तक नम्र हो रहा है। ऐसी नमस्कार करती हुई उन दोनों पुत्रियों को उठाकर भगवान ने प्रेम से अपनी गोद में बैठाया। उन पर हाथ फेरा, उनका मस्तक सूंघा और कहने लगे कि तुम शीलवंती पुत्रियों को यदि विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम्हारा यह जन्म सफल हो सकता है। विद्या कामधेनु चिंतामणि रत्न, बंधु मित्र, कल्याण करनेवाली और साथ जानेवाली लक्ष्मी है। हे पुत्रियों!

तुम्हारा विद्या ग्रहण करने का यही काल है, इसलिये विद्या ग्रहण में प्रयत्न करो। तदनंतर जो भगवान के मुख से निकली हुई है, जिसमें सिद्धः नमः इसप्रकार का मंगलाचरण अत्यंत स्पष्ट है, जिसका नाम सिद्ध मातृका है और स्वर और व्यंजन के भेद से दो भेदों को प्राप्त तथा शुद्ध ऐसी अक्षरवाली बुद्धिमती ब्राह्मी पुत्री ने धारण किया और अतिशय सुंदरी देवी ने इकाई दहाई आदि स्थानों की क्रम से... गणित शास्त्र को अच्छी तरह धारण किया। इसप्रकार गुरु अथवा पिता के अनुग्रह से जितने समस्त विद्याऐं पढ़ ली हैं, ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिये पात्रता को प्राप्त हुई थीं।

जगद्गुरु भगवान ऋषभदेव ने इसीप्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये। लौकिक उपकार करनेवाले जो जो शास्त्र थे, भगवान आदिनाथ ने वे सब अपने पुत्रों को सिखलाये थे। कल्पवृक्ष नष्ट होने से भयभीत प्रजा जो भगवान के शरण में गई थी, उन्हें आश्वासन देकर षट्कर्म सिखलाये। इंद्र ने मंगलपूर्वक अयोध्यापुरी के बीच में जिनमंदिर की रचना की, और अनेक देश नगर स्थापित किये। उस समय असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प, ये छह कार्य जो आजीविका के उपाय थे, वे सब भगवान ऋषभदेव की संमति से प्रवृत्त हुए थे। बाद में देवों और नगरजनों ने बड़े आनंद और हर्ष से भगवान का राज्याभिषेक किया था। (क्रमशः)

जीव ज्ञानमय है

शरीरमय या रागमय नहीं है

(समयसार कलश ३८-४० तथा गाथा ६७-६८ के प्रवचनों से)

आत्मा ज्ञानमय है, उसके सर्वभाव ज्ञानमय ही हैं। पुद्गल से रचित देहादि या रागादि भाव वह वास्तव में आत्मा नहीं हैं; उन देहादि को या रागादि को आत्मा कहना, वह तो 'घी का घड़ा' कहने समान व्यवहार है। पुद्गल से निर्मित भाव पुद्गल ही होते हैं, जीव नहीं होते, उसीप्रकारजीव से रचित भाव जीव ही होते हैं, अजीव नहीं होते। जीव के भाव तो ज्ञानमय हैं, वे जीव से पृथक् नहीं हैं। जिसप्रकार जगत में सुवर्ण से निर्मित म्यान को लोग सुवर्ण का ही देखते हैं, किसीप्रकार उसे तलवाररूप नहीं देखते। तलवार का म्यान—ऐसा कहने पर भी लोग जानते हैं कि—तलवार तो लोहे की है और म्यान सोने का है, इसलिये वास्तव में म्यान तलवार का नहीं है; म्यान तो सोने का ही है। उसीप्रकार व्यवहार कथन में पंचेन्द्रिय जीव, दैव का जीव, रागी जीव, क्रोधी जीव—ऐसा कहा जाता है; वहाँ ज्ञानी तो समझते हैं कि—परमार्थतः जीव तो ज्ञानमय ही है, कहीं इंद्रियमय या रागमय नहीं है। इंद्रियाँ और रागादिभाव तो ज्ञानस्वभाव से भिन्न हैं। इंद्रियाँ कहीं जीव से निर्मित नहीं हैं, वे तो पुद्गल से निर्मित हैं, इसलिये वे पुद्गल ही हैं—जीव नहीं हैं। उसीप्रकार रागादिभाव भी जीव के स्वभाव से नहीं हुए हैं, इसलिये परमार्थतः वे जीव नहीं हैं; किंतु पुद्गल के आश्रय से हुए हैं और परमार्थतः पुद्गल के ही हैं। जो सचमुच जीव के भाव हो, वे जीव से कभी पृथक् नहीं होते।—इसप्रकार जीव-अजीव की अत्यंत भिन्नता बतलाकर तथा राग से पार जीव को परमार्थस्वरूप ज्ञानमय है, वह बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि—अहो, ज्ञानीजनों! तुम ऐसे परमार्थस्वरूप जीव को जानो! वर्णादिक तथा रागादिक को जीव से भिन्न जानो! जीव तो सदा ज्ञानमय है—ऐसा अनुभव करो। ज्ञानी-धर्मात्मा तो ऐसे आत्मा का अनुभव करते ही हैं, परंतु उनका नाम लेकर अन्य जीवों के लिये भी आचार्यदेव ने प्रेरणा की है कि—ज्ञानियों की भाँति तुम भी ऐसे आत्मा का अनुभव करो।

आत्मा, शरीर से और राग से भिन्न ज्ञानमय ही है; परंतु जिसे ऐसा ज्ञानमय आत्मा प्रसिद्ध नहीं है, जो ज्ञानमय आत्मा को नहीं जानता, उसे समझाने को पंचेन्द्रिय जीव, रागी जीव—ऐसा व्यवहार किया जाता है, परंतु सचमुच उसमें इंद्रियाँ अथवा राग, सो जीव नहीं है; जीव तो ज्ञानमय

ही है—ऐसा जाने, तभी जीव की सच्ची पहिचान होती है। जैसे घड़ा तो मिट्टी का ही है, कहीं घी का नहीं है, परंतु जो घी के संबंध से रहित मिट्टी के घड़े को नहीं जानता, उसे समझाने के लिये 'घी का घड़ा'—ऐसा उपचार किया जाता है, वास्तव में घड़ा घी का नहीं किंतु मिट्टी का ही है। उसीप्रकार शुद्धज्ञानमय जीव को लोग नहीं जानते और 'अशुद्ध जीव' ही उनके प्रसिद्ध है, इसलिये उन्हें समझाने के लिये ऐसा कहा जाता है कि जो यह वर्णादिमान जीव है। वह वास्तव में वर्णादिमय नहीं है किंतु ज्ञानमय है। इसप्रकार व्यवहारनय से जीव को शरीरयुक्त तथा रागयुक्त कहा, उसमें शरीर एवं राग का पृथक्करण करके, उनसे पृथक् ज्ञानमय जीव को जानना, सो परमार्थ है। ऐसे परमार्थ स्वरूप जीव की पहिचान के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन के बिना जन्म-मरण का अंत नहीं आता।

अरे, अनादि से अपने वास्तविक स्वरूप को जाने बिना शरीरादि में ही अपना अस्तित्व मानकर जीव एक के बाद एक शरीर बदलता-बदलता चार गतियों में परिभ्रमण कर रहा है। अहो, चैतन्यमय महा सत् ऐसे स्वतत्त्व की ओर जीव ने दृष्टि भी कभी नहीं की और परद्रव्य में 'यह मेरे, यह मेरे'—ऐसी दृष्टि करके वही उपयोग को लगाया है। यहाँ तो कहते हैं कि—शरीरादि तो पुद्गल की रचना है ही, और जो रागादि परभाव हैं, वे भी वास्तव में शुद्ध चैतन्य की उपज नहीं हैं किंतु मोहकर्म में युक्तता की उपज हैं, इसलिये उसे भी पुद्गलमय कहकर, शुद्ध जीवस्वभाव की दृष्टि करायी है।

शरीर तो जड़ है, उसकी श्वासादि क्रियाएँ चैतन्य के हाथ में नहीं हैं। रागादि भाव यद्यपि जीव की ही अवस्था में होते हैं परंतु वह जीव का मूल स्वभावभाव नहीं है, जीव के स्वभाव की सन्मुखता से उस राग की उत्पत्ति नहीं होती और उस राग के साथ जीव के स्वभाव की तन्मयता नहीं है, इसलिये वास्तव में वह राग भी अचेतन है। रागी जीव कहने से सचमुच जीव रागमय नहीं है, जीव तो ज्ञानमय है—ऐसी प्रतीति करे तो उसने जीते जी शरीर को पृथक् जान लिया है, इसलिये मृत्युकाल में उसका समाधिमरण होता है।

देखो, यह समाधिमरणपूर्वक भव का अंत करने की रीति है! जिसने शरीर से भिन्न तथा असमाधि के भावों से भी भिन्न ऐसे जीव को जाना हो, उसी को स्वभाव के आश्रय से समाधि होती है। भेदज्ञान के बिना कभी समाधि नहीं होती। ज्ञानी-धर्मात्मा को शरीर से भिन्न चैतन्य के वेदन में सदा समाधिभाव ही वर्तता है।

नित्यस्थायी चैतन्यतत्त्व पर जिसकी दृष्टि गई, उसको शरीरादि के क्षणिक संयोग की दृष्टि

नहीं रही, इसलिये शरीर छूटने से मेरा नाश हो जायेगा—ऐसी असमाधि उसको नहीं होती। अज्ञानी भले ही 'शुद्धोऽहं, निर्विकल्पोहं'—ऐसा रटते-रटते देह छोड़े, परंतु उसकी दृष्टि में तो शरीर और राग की ही पकड़ बनी है। निर्विकल्पोहं—ऐसा जो विकल्प, उसकी उसे पकड़ है, इसलिये वह विकल्प में वर्त रहा है; उसको निर्विकल्पता है ही नहीं। जिसने विकल्प से भिन्न तत्त्व को जाना ही नहीं, उसे निर्विकल्पता कैसी? ज्ञानी तो अंतर्मुख होकर शुद्धज्ञानमय तत्त्व का वेदन करता है, उस वेदन में विकल्प का भी अभाव है, इसलिये उसे 'निर्विकल्पोहं' ऐसा साक्षात् परिणमन होता रहता है।

आत्मा चैतन्यमय है; चैतन्य में से चैतन्य भाव की ही उत्पत्ति होती है, चैतन्य में से राग की उत्पत्ति नहीं होती; इसलिये चैतन्यभाव से भिन्न जो भी भाव हों, वे वास्तव में चेतन के नहीं हैं, और चेतन के नहीं हैं; इसलिये उन्हें जड़ का ही कहा है। देखो, ऐसे चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभूति करना, वह मोक्षार्थी का नियम से कर्तव्य है। शुद्ध चैतन्यमय भावों को ही जीव कहा और रागादि को जीव नहीं कहा, इसलिये वास्तव में परमार्थ जीव को ही जीव कहा और व्यवहार जीव को जीव नहीं कहा। ज्ञानी स्वसंवेदन से जीव का चैतन्यस्वभावरूप ही अनुभव करते हैं, रागरूप या भेदरूप अनुभव नहीं करते। मोह और योग से उत्पन्न हुए जो गुणस्थान भेद हैं, वे एकरूप जीवस्वभाव में नहीं हैं; जीवस्वभाव तो चैतन्यस्वभाव से ही सदा व्याप्त है—ऐसा आगम से भी प्रसिद्ध है। ज्ञानी एकरूप चैतन्यस्वभाव का सदा भेद से भिन्नरूप अनुभव करते हैं। पर्याय में जो भेद-विकार है, वह चैतन्यस्वभाव में व्याप्त नहीं है, ऐसे चैतन्यस्वभाव का भेदज्ञानी स्वयं अनुभव करते हैं और आत्मा के अनुभव से ही अपूर्व भेदज्ञान होता है।

अहो, यह मनुष्य भव प्राप्त करके यही करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप सम्यक् आचरण ही मोक्ष का कारण है। इसलिये वही कर्तव्य है, इससे विरुद्ध आचरण कर्तव्य नहीं है। जिसमें चैतन्य का प्रकाशन हो, ऐसा चैतन्यभाव ही चैतन्य का आचरण है; राग में चैतन्य का प्रकाश नहीं है; वह राग वास्तव में चैतन्य का आचरण नहीं है। ज्ञानी अपने चैतन्यभाव को राग से पृथक् ही अनुभव करते हैं। अहा, संतों ने अपने अनुभव को आगम में उतारा है। अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले संतों ने केवली जैसा कार्य किया है। अंतर की दृष्टि तथा अनुभव की तो अत्यंत निर्मलता और तदुपरांत उस अनुभव को शास्त्र में उतारने की अगाध क्षयोपशम शक्ति! एकदम स्पष्ट वस्तुस्थिति स्वानुभव से, युक्ति से तथा आगम से बतला दी है।

आचार्यदेव कहते हैं कि अंतर के स्वसंवेदन में जो चैतन्यरूप से अत्यंत जगमग प्रकाशित हो रहा है, वही जीव है।

जिनेन्द्र-वेदी प्रतिष्ठा निमित्त पूज्य कानजी स्वामी का विहार एवं धर्म प्रभावना समाचार

(तारीख १०-२-६५ से तारीख ४-३-६५)

भोपाल—सकल दिगंबर जैन समाज की ओर से खास आमंत्रण से पूज्य स्वामीजी तारीख १२-२-६५ को पधारे। श्री चुन्नीलालजी दौलतरामजी के द्वारा नूतन जैन मंदिर में वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव विशेष आयोजन सहित मनाया गया। बाहर गाँव से भी बहुत संख्या में धर्म जिज्ञासुओं ने पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ लिया। इस बार भी स्वामीजी विकास मंत्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल के यहाँ ठहरे थे।

तारीख १४ विशाल रूप में जिनेन्द्र रथयात्रा, कलशारोहण तथा वेदीजी में श्रीजी विराजमान हुए, चौसठ ऋद्धि विधान हुआ। सायं मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र, उद्योगमंत्री डॉ० शंकरदयालजी, विकास मंत्रीजी तथा विधानसभा के स्पीकर पंडित कुंजीलालजी दुबे पधारे। श्री कानजीस्वामी के प्रवचन पश्चात् मुख्यमंत्रीजी ने अपने भाषण में पूज्य स्वामीजी के प्रवचन की प्रशंसा की। श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री, श्री पंडित परमेष्ठीदासजी, श्री ताराचंदजी प्रेमी, श्री विनयकुमारजी, पथिक डॉ० हरिरामजी, पंडित सुमतिचंदजी मोरेना आदि का समागम हुआ, अखिल विश्व जैन मिशन द्वारा साहित्य वितरण और प्रदर्शनी हुई।

मक्षी पार्श्वनाथ—तारीख १५-१६ स्वामीजी यहाँ दर्शनार्थ पधारे, दो दिन भक्ति पूजन का कार्यक्रम रहा।

इंदौर—तारीख १७-१८ रा०ब० सेठ सा० श्री राजकुमारसिंहजी सहित सकल दिगम्बर जैन समाज के आमंत्रण से पूज्य स्वामीजी पधारे, भव्य स्वागत हुआ, शीश महल के सामने विशाल पंडाल में प्रवचन रखा गया था, बड़ी संख्या में जैन-जैनेत्तर समाज ने लाभ लिया, स्वामीजी को इस बार इंद्र महल में ठहराया गया था।

श्री राजकुमारसिंहजी, श्री हीरालालजी कासलीवाल, श्री देवकुमारजी, श्री गुलाबचंदजी टोंग्या, श्री भँवरीलालजी, श्री माणिकचंदजी सेठी आदि तथा उच्च शिक्षा प्राप्त प्रमुख व्यक्ति और युवक वर्ग अब विशेष रूप में पूज्य स्वामीजी द्वारा प्ररूपित जैन तत्त्वज्ञान समझने में रुचि रखते हैं। इंदौर जैन समाज में पूज्य स्वामीजी के परम भक्त व मनोज्ञ वक्ता श्री बाबूभाई के प्रति सबका

असाधारण प्रेम और बहुमान देखने में आता था। [इस समय तो आप ५०० यात्री संघ सहित सम्मेदशिखर यात्रार्थ रास्ते के स्थानों में थे और हरेक स्थानों से श्री बाबूभाई की प्रवचन शैली, भक्ति और प्रभावना के समाचार आते रहते हैं।]

विदिशा—तारीख २८-२-६५ पूज्य स्वामीजी का आध्यात्मिक प्रवचन सुनने की तीव्र जिज्ञासा होने के कारण सभा में श्रोताओं की बड़ी संख्या में उपस्थिति थी, सेठ श्री लक्ष्मीचंदजी सा० ने पूज्य स्वामीजी का उपकार मानकर हर्ष में पचास हजार का दान जैन औषधालय विदिशा को दिया, यहाँ स्वाध्याय भवन बन रहा है। श्री जवाहरलालजी ने आगे ५०००) का दान दिया था फिर दूसरी बार दिया, सभी का उत्साह सराहनीय था। श्री नंदकिशोरजी एडवोकेट (प्रमुख श्री मुमुक्षु मंडल) को जैन तत्त्वज्ञान का अच्छा अभ्यास है।

उज्जैन—तारीख १९ से २२-२-६५ तक क्षीर सागर में नवनिर्मित सीमंधर जिनमंदिर का विशेषरूप से विविध आयोजनों के साथ वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया गया। रा०ब० सेठ श्री लालचंदजी सा० सेठी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे, १५ दिन पूर्व खुद अनेक भाईयों के साथ सोनगढ़ आकर निवेदन करने पर पूज्य स्वामीजी का इस बार मध्यप्रदेश में आगमन का निश्चय हुआ, बाद में बुखार आ गया था। किंतु वचन पालन करने के लिये क्रमशः सब जगह का कार्यक्रम चालू रखा। नियत समय पर आप उज्जैन नगरी में पधारे, भव्य स्वागत हुआ, इस बार भी रा०ब० सेठीजी के यहाँ ही पूज्य स्वामीजी को ठहराया गया था। विशाल पंडाल में (क्षीर सागर पर) पूज्य स्वामीजी के प्रवचन होते थे और यही सभी के लिये मुख्य आकर्षण था। शंका समाधान का समय भी रखा था। फतेपुर-गुजरात निवासी श्री बाबूभाई ५०० यात्री संघ सहित इंदौर होकर यहाँ इस अवसर पर खास आमंत्रण से पधारे थे। आप जैनधर्म के खास प्रभावक पुण्यात्मा हैं और योग्य वक्ता हैं। पूज्य स्वामीजी तथा आपके कारण यहाँ वेदी प्रतिष्ठा की विधि में बड़ा भारी उत्साह तथा आकर्षण था, वेदीजी में श्रीजी को विराजमान बाद अभूतपूर्व विशाल भगवान जिनेन्द्र की रथयात्रा निकाली थी। जिसका क्या वर्णन किया जाये। जनसंख्या की बेशुमार भीड़, हाथी सहित विराट भव्य रथयात्रा के समय श्री बाबूभाई की जिनेन्द्र भक्ति भी अद्‌भुत थी, तथा बोलियों में जिनमंदिर को सब मिलकर ३० हजार की आय हुई। उसमें विशेष रकम श्री बाबूभाई के यात्रीसंघ द्वारा ही आयी है। पंडित श्री सत्यंधरकुमारजी सेठी, श्री पंडित अनंतराजजी का भी उत्तम सहयोग रहा। इस सत्प्रयत्न के लिये श्री फूलचंदजी झांझरी, श्री चांदमलजी गांधी आदि दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल को भी धन्यवाद।

मुंगावली—तारीख २४-२-६५ धर्म प्रभावक विदुषी श्री हीराबाई (भूतपूर्व अधिष्ठाता श्री कंचनबाई श्राविकाश्रम इंदौर) की यह जन्मभूमि है, यहाँ १५० करीब जैन घर हैं। श्री हीराबाई जो अब सोनगढ़ ब्रह्मचारी बहिनों के आश्रम में रहती हैं, उन्हीं की अनुरोध भरी प्रार्थना से पूज्य स्वामीजी यहाँ पधारे, उस समय सारे गाँव में भारी उत्साह था। प्रवचन में आसपास के गाँवों से भी अनेक भाई-बहन पधारे थे। यहाँ सभी भाइयों में भारी धर्म प्रेम, एकता और उत्साह था।

मल्हारगढ़—[श्री निसईजी क्षेत्र तारण समाज का प्रमुख तीर्थ है, जो कोटा बीना लाइन पर मुंगावली स्टेशन से ९ मील दूर मल्हारगढ़ के निकट वेतवा तट पर मनोरम अटवी में दिगम्बर जैन संत श्री तारण तरणस्वामी की तपस्या और समाधि स्थान है। जहाँ पर दिव्य छटामय बड़ी निसईजी का उत्तंग मंदिर, छात्रावास, पाठशाला, धर्मशाला भी है जो सागर निवासी समाजभूषण श्री भगवानदास शोभालाल की ओर से बने हैं। यहाँ पर उन्हीं के द्वारा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर बनाया गया है। उसके उद्घाटन निमित्त तथा पूज्य कानजीस्वामी के पवित्र उपदेश का लाभ बड़ी संख्या में मिल सके, इस हेतु से सोनगढ़ आकर स्वामीजी को इस स्थान पर पदार्पण कराने की तीव्र भावना प्रगट की थी, स्वीकृति मिलते ही १ मास की बड़ी भारी तैयारी से विशाल आयोजन सहित जंगल में सब व्यवस्था रखी थी, जाहिर आमंत्रण पत्र द्वारा प्रचार किया गया था, ठीक समय पर मेला लग गया, संख्या ११००० थी।]

तारीख २५-२-६५ नियत समय पर पूज्य कानजीस्वामी पधारे, सोत्साह अपार जनता द्वारा हर्ष ध्वनिपूर्वक गाजे-बाजे से स्वागत, नया स्वाध्याय मंदिर का पूज्य कानजीस्वामी द्वारा उद्घाटन हुआ, विकास मंत्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल द्वारा वेदी पर कलशारोहण, श्री तखतमलजी जैन (भूतपूर्व मंत्री मध्यप्रदेश शासन) द्वारा भवन पर कलशारोहण हुआ। बाद सुशोभित सभा मंडप में पूज्य कानजीस्वामी का आध्यात्मिक संत श्री तारणस्वामी रचित ग्रंथों पर भी अध्यात्म रस से भरपूर प्रवचन हुआ। करीब ११ हजार संख्या का अतिशय उत्साह-भक्तिरस और पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक रसमय प्रवचन सुनने का सभी का प्रेम देखते ही बनता था। धर्म प्रचारार्था सोनगढ़ से बड़ी संख्या में पुस्तक मंगाकर कम मूल्य में बेचने का स्टोल खोला था, धर्मी श्रावक की दिव्य दृष्टि नामक पुस्तक भेंटस्वरूप बांटी थी, जिसमें सोनगढ़ में श्री तारण स्वामी कृत श्रावकाचार पर किये गये प्रवचन थे। सेठजी श्री भगवानदास व शोभालालजी अपनी पूर्ण भक्ति के साथ पूज्य कानजीस्वामी के प्रति श्री तारण तरण स्वामी के समान परम प्रेमपूर्वक भक्ति और उपकार प्रगट कर बारंबार अपूर्व उपकार मानकर हर्ष प्रगट करते-करते गदगद हो जाते थे। चांदी पर लिखित सुंदर

भक्तिमय अभिनंदन पत्र भेंट किया, स्वामीजी का दो दिन में (तारीख २५-२६) प्रवचन हुए, भावभीनी विदाई का दृश्य देखते ही बनता था।

मेला में जैन तारण समाज के उपरांत दिगम्बर जैनों की भी अच्छी उपस्थिति थी। सभी को भोजन, आराम आदि की सुंदर व्यवस्था मेला संयोजक सेठजी की ओर से थी-समस्त तारण समाज ने समाजभूषण सेठजी को श्रीमंत सेठ की उपाधि और सम्मान पत्र अर्पण किया।

सेठजी के आमंत्रण से श्री बाबूभाई ५१५ यात्रियों के साथ पधारे थे। स्वागत समारोह एवं रात्रि में शास्त्र प्रवचन भजनादि हुए। भावपूर्ण और सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्म की महिमा दर्शक कीर्तनादि की दिव्य छटा-अनुपम-अनुकरणीय थी।

अशोकनगर (गुना, मध्यप्रदेश)—तारीख २७-२-६५ पूज्य स्वामीजी का पदार्पण हुआ, यहाँ भी सभी को अनेरा अपूर्व उत्साह था, मार्ग में ३० द्वारा सुंदर ढंग से बनाये थे, सारा नगर वंदनमालाओं की झंडियों से सुशोभित किया गया था, पूज्य स्वामीजी का स्वागत करने का ऐसा अपूर्व अवसर और उत्साह नगर में प्रथम बार ही देखने को मिला, आसपास के गाँवों से भी धर्म जिज्ञासुओं का मेला लग गया था, विराट सभा बड़ी रुचि-शांति-एकाग्रता से पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सुन रही थी, आत्मकल्याण को अत्यंत स्पष्टरूप में दर्शानेवाले प्रवचन द्वारा स्वामीजी वास्तव में जैनत्व और सुख का उपाय बता रहे थे, इसप्रकार दोपहर को भी प्रवचन हुआ।

रात्रि को विशाल जनसमूह उपस्थित था। ३० मिनिट शंका समाधान बाद अभिनंदन समारोह श्री रघुनाथप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में हुआ जिसमें (१) दिगम्बर जैन समाज अशोकनगर द्वारा गद्य काव्यों में, (२) मुमुक्षु मंडल द्वारा संस्कृत पद बद्ध में, (३) जैन संस्कृति मंडल की ओर से काव्यरूप अभिनंदन पत्र भेंट किये गये।

अहमदाबाद—तारीख ३-३-६५ स्थानीय वर्तमान पत्रों के द्वारा पूज्य कानजीस्वामी अहमदाबाद पधारने का समाचार होने से बड़े आयोजन सहित स्वागत हुआ, ठि० खाडिया गोलवाड के सामने।

जहाँ पर नूतन दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण होनेवाला है। वहाँ सभा मंडप बनाया था, स्वामीजी के प्रवचन में बड़ी संख्या में श्रोतागण और शहर के अग्रणी जन पधारे थे। यहाँ वेदीजी में श्री सीमंधर भगवान, श्री ऋषभदेव भगवान, श्री महावीर भगवान की प्रतिमाजी विराजमान हैं, हमेशा नियमसार पूजन, स्वाध्याय, प्रवचन, पाठशाला तथा सामूहिक जिनेन्द्र भक्ति का कार्यक्रम चालू है। बगल में दिगम्बर जैन धर्मशाला बन रही है।

पुस्तक मंगाने के लिये सूचना

ओर्डर देते समय आपका नामादि, पता, रेलवे स्टेशन, जिला, स्पष्ट लिखें। यदि प्रथम से रकम भेजें तो उसका पार्सल पेकिंग व रेलवे खर्च ज्यादा भेजना चाहिये। पुस्तक वी०पी० से भेजने में ही ज्यादा सुविधा रहती है, कारण कि मनी ओर्डर द्वारा मूल्य भेजने में मामूली फर्क रहता है।

चैक, ड्राफ्ट, मनी ओर्डर 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट' के नाम से भेजें। गाँव का नाम अंग्रेजी में लिखें।

ग्राहकों से खास निवेदन

आत्मधर्म का यह ११वाँ अंक पाठकों के पास पहुँच गया, इस साल ग्राहकों द्वारा खुशी समाचार के पत्र आ रहे हैं, धर्म जिज्ञासुओं को अच्छा संतोष प्राप्त हुआ है। ६ का जगह घाटा उठाकर ३) रुपया सालाना ही चंदा रखा है। अत: ग्राहकों से सानुरोध प्रार्थना है कि इस पत्र के ग्राहकों की संख्या बढ़ावें, सुझाव भेजें और याद करके ३) मनिआर्डर से शीघ्र ही भेज देवें ताकि वी०पी० भेजने का ८५ पैसे की बचत होगी, वी०पी० करने में दो मास तक भारी अड़चनें रहती हैं, पोस्ट में एक साथ ज्यादा वी०पी० नहीं होती। सबसे यह भी प्रार्थना है कि साथ में अपना ग्राहक नंबर, पूरा पता, पोस्ट, जिला आदि स्पष्ट लिखें। हिन्दी आत्मधर्म का चंद ३) है, गुजराती का ४) रुपया वार्षिक है।

मनिआर्डर भेजने का पता—
आत्मधर्म कार्यालय
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा

राजकोट (सौराष्ट्र) में समवसरण जिनमंदिरजी तथा मानस्तंभजी अर्थात् धर्म वैभव स्तंभ का निर्माण हो रहा है। जिनेन्द्र भगवंतों के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की अंतिम तिथि वैशाख सुदी १२ है।

वैशाख सुदी २ पूज्य कानजी स्वामी की ७६वीं जयंती मनाई जायेगी। पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ से चैत्र सुदी १३ को राजकोट पधारेंगे, एक मास तक राजकोट में ही ठहरेंगे और वैशाख सुदी १३ को सोनगढ़ पधारेंगे।

जैन दर्शन शिक्षण वर्ग द्वारा धर्म प्रभावना का आयोजन

कानपुर—तारीख १६-३-६५ से २५-३-६५ यहाँ इन दिनों में बाजार में व्यापार बंद रहता है, धर्म जिज्ञासुओं के लाभार्थ अधिवेशन तथा शिक्षण शिविर सानंद संपन्न हुआ। तारीख १६ को अधिवेशन का उद्घाटन कार्य डॉ० ज्योतिप्रसादजी जैन, एमए, एलएलबी, पीएच.डी. लखनऊ के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

मुख्य प्रवक्ता पंडित फूलचंदजी सिद्धांताचार्य सि०शा० वाराणसी थे। आपकी शैली सरल और मनोज्ञ वक्ता के गुण अत्यंत सराहनीय हैं, आपके प्रवचन प्रातः तथा सायंकाल होते थे। यहाँ धर्म जिज्ञासा की प्राथमिकता होने से आपने सात तत्त्वों तथा उनकी भूलों को आम जनता को सरल रीति से समझाया तथा शंका समाधान भी करते थे।

श्री कैलाशचंद्रजी बुलन्दशहर व श्री रमेशचंद्रजी (सोनगढ़) ने मुख्यरूप से शिक्षण वर्ग के कार्य को सम्भाला जो कि अद्वितीय रहा। पढ़ाई में जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला, स्पष्ट करके समझाया, कार्यक्रम प्रतिदिन ६ से ८ घंटे चला। दो दिन तीर्थयात्रा की फिल्म करांची, रंगून व स्वरूपनगर में दिखलाई गई तथा पूज्य कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन टेपरिकार्डिंग द्वारा सुनाये गये। तारीख २५-३-६५ को आदरणीय पंडित श्री फूलचंदजी, कैलाशचंद्रजी, रमेशचंद्रजी तथा आगम मेहमानों के प्रति धर्म जिज्ञासुओं ने कुछ वक्तव्य द्वारा भक्तिभाव से आभार प्रगट किया।

छगनलाल जैन

संयोजक—श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, कानपुर

★

जयपुर में अपूर्व धर्म प्रभावना

पंडित टोडरमल स्मारक भवन शिलान्यास महोत्सव के शुभावसर पर सोनगढ़ के प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता ब्रह्मचारी पंडित खीमचंदजी शेठ के प्रवचनों से यहाँ अपूर्व धर्म प्रभावना व जागृति हुई, जिससे लोगों को काफी प्रोत्साहन मिला तथा श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल की ओर से श्री महावीरस्वामी, श्री पार्श्वनाथस्वामी, काला छाबडान, बिजैरामजी, चंपारामजी, गुमानीजी व

जोबनेर आदि के विभिन्न प्रमुख मंदिरों में नित्य प्रति सामूहिक स्वाध्याय प्रवृत्ति चालू की गई है, जिसमें आबाल, युवक व वृद्ध नर-नारी उत्साह सहित सम्मिलित होकर धर्म लाभ उठाते हैं।—श्री नेमीचंदजी पाटनी व अन्य विद्वान शास्त्र प्रवचन करते हैं।

इस वर्ष मुमुक्षु मंडल की ओर से एक धार्मिक शिक्षण शिविर का भी आयोजन किया जावेगा।

तारीख २०-४-६५ को श्री बाबूभाई (फतेहपुर) यात्रा संघ में ५५० साधर्मी बंधु यहाँ पधार रहे हैं, उनका यहाँ अभूतपूर्व स्वागत किया जावेगा तथा विभिन्न धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन होगा, जिसके द्वारा सभी में अपूर्व जागृति उत्पन्न होगी।

डॉ० ताराचंद्र जैन बक्षी
मं० मुमुक्षु मंडल जयपुर

★

सुवर्णपुरी-सोनगढ़ समाचार

परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुखशांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे परमात्मप्रकाश तथा दोपहर को श्री समयसार कलश पर कविवर श्री हेमराजजी पांडे कृत टीका [जो जैनधर्म में आध्यात्मिक रहस्य को खोलनेवाली अनुपम रचना है] उस पर प्रवचन होते हैं, टेपरील में यह प्रवचन ले लिया जाता है।

अष्टाह्निका पर्व हरसाल माफिक मंडल विधान सहित बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया।

निश्चय-व्यवहारनय की मर्यादा

दोनों नय के बारे में आचार्यकल्प श्री टोडरमलजजी ने पुरुषार्थ सिद्धि उपाय गाथा ४ की टीका में कहा है कि 'निश्चय और व्यवहार के ज्ञायक आचार्य ने मुख्य (-निश्चय) और उपचार (व्यवहार) कथन से शिष्यों का अपार अज्ञान दूर किया है, जो जगत में धर्म तीर्थ प्रवर्तन कराते हैं।' भावार्थ में कहा है कि—'उपदेशदाता आचार्य में अनेक गुण चाहिये परंतु निश्चय-व्यवहारनय का जानपना मुख्य चाहिये। काहे तैं? जीवों के अनादि ही कौ अज्ञानभाव है सो मुख्य (निश्चय) कथन, और उपचार (-व्यवहार) कथन के जानपना तै दूरी होय है। तहाँ मुख्य कथन तो निश्चयनय के आधीन है, सोई दिखाइये है—स्वाश्रित तौ निश्चय जो अपनी ही आश्रित होय, सो निश्चय कहिये। जिस द्रव्य के अस्तित्व में जो भाव पाइये, उस द्रव्य के विषैं उस ही का स्थापन करना, परमाणुमात्र भी अन्य कल्पना नांहीं करनी, तिस को स्वाश्रित कहिये, तिसका कथन सो मुख्य कथन कहिये। इसके जानि अनादिक शरीरादिक परद्रव्यनि सों एकत्व श्रद्धानरूप अज्ञानभाव का अभाव होय है, भेदविज्ञान की प्राप्ति होय है, सर्व परद्रव्य सों भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप को अनुभव होय हैं। तहाँ परमानंददशा में मग्न होय केवलदशा को प्राप्त होय है। जो अज्ञानी इसको बिना जाने धर्म को लगे हैं, ते शरीराश्रित क्रियाकांड को उपादेय जानि संसार का कारण जो है शुभोपयोग, तिस ही कों मुक्ति का कारण मान स्वरूपतें भ्रष्ट हुआ संसार में भ्रमें है, तिसतैं मुख्य (निश्चय) कथन का जानपना अवश्य चाहिये।'

'बहुरि पराश्रितो व्यवहार। जो परद्रव्य के आश्रित होय, सो व्यवहार कहिये। किंचित् कारण पाय अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करै, तिसको पराश्रित कहिये। तिसका जो कथन, सो उपचार कथन कहिये। इनके जानि शरीरादिक सो संबंधरूप संसारदशा को जानि, संसार के कारणजो है आस्रव-बंध, तिनकों पहिचानि, मुक्ति होने के उपाय जुं हैं संवर-निर्जरा, तिसविषैं प्रवत्तै। अज्ञानी इसको जाने शुद्धोपयोगी हुवा चाहे हैं, ते पहिले ही व्यवहार साधन को छोड़ी पापाचरण विषैं लागि नरकादि दु:ख संकट में जाय परैं हें। तिसतैं उपचार कथन का भी जानपना चाहिये। इस भाँति दोऊ नय का ज्ञायक आचार्य धर्म तीर्थ का प्रवर्तक है, अन्य नाहीं।

आगे कहें हैं कि दोऊ नयों का कौन भाँति उपदेश करें हैं।

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्
भूतार्थबोध विमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥५॥

टीकाः—'इह निश्चयं भूतार्थं व्यवहार अभूतार्थं वर्णयंति' आचार्य इन दोऊ नयों में निश्चयनय को भूतार्थ कहें हैं। भावार्थ-भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है, भूत कहिये जो पदार्थ विषैं पाइये अर्थ=भाव तिसकौं प्रकाशे, अन्य कल्पना न करे, तिसकूं भूतार्थ कहिये। जैसे सत्यवादी सांच ही कहै, कल्पना करि न कहै, सो ही दिखाइये है, यद्यपि जीव अर पुद्गल कै अनादि एकक्षेत्रावगाह संबंध है, मिले से दीखे हैं, तथापि निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादिक परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशे है, सो ही भिन्नता मुक्तिदशा विषैं प्रगट होय है, तिनतैं निश्चयनय सत्यार्थ है। बहुरि अभूतार्थ नाम असत्यार्थ का है, अभूत कहिये जो पदार्थ न पाइये, अर्थ कहिये भाव, तिसकौं जो प्रकाशै-अनेक कल्पना करै, तिसकूं अभूतार्थ कहिये, जैसे मृषावादी तुच्छ भी कारण का छल पावै तो अनेक कल्पना करि तादृश करि दिखावे ××तिसतैं व्यवहारनय असत्यार्थ है। अतिशय कर सत्यार्थ जु निश्चयनय, तिसते जानपना से उल्टा परिणाम, सो समस्त ही संशय स्वरूप है।

[व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है किंतु वीतरागता के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इस अपेक्षा से असत्यार्थ है।]

'प्रायः भूतार्थ बोध विमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः'—आत्मा का परिणाम निश्चयनय के श्रद्धान से विमुख होकर शरीरादि परद्रव्यों से एकत्वरूप प्रवर्तन करता है, इसको ही संसार कहते हैं—[प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप है, अपने से है, अपने आधार से है, निरंतर निजशक्ति से ही परिणमन करते रहते हैं किंतु कभी भी कोई द्रव्य परद्रव्यादिरूप नहीं है, पर से नहीं है, पर के आधार से नहीं है, पर उसे आधीन करे या पर की शक्ति से उनका परिणमन हो, ऐसा नहीं है, पराश्रयवाला और एकद्रव्य दूसरे का कुछ कर सकते हैं, ऐसा मानना—पर में एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व-अज्ञानभाव है, कार्यकाल में निमित्त का ज्ञान कराने के लिये असद्भूत व्यवहार से निमित्तों में उपचारमात्र कर्तापना का कथन आता है, उसे निश्चय से कर्ता मानना, वह भी शरीरादिक में एकताबुद्धिरूप संसार है, शुभाशुभभाव पराश्रय भाव है। उसे या उससे वीतरागतारूप धर्म मानना, वह भी मिथ्यात्व-अज्ञानरूप संसार है। यह मिथ्या भावना ही सर्व दुःख का मूल है] तिसतैं जो जीव संसारसों मुक्त हुआ चाहै है, तिसको शुद्धनय के सन्मुख (-शुद्धनय के विषयरूप शुद्धात्मा सन्मुख) रहना योग्य है।

सोई दिखाइए है, जैसे बहुत पुरुष कर्दम संयोग करि निर्मलभाव आच्छादित हुआ है ऐसे समल जल पीवै है, कोई अपने हस्तकरि कतकफल को डारि कर्दम और जल को जुदा-जुदा करैं हैं, तहाँ निर्मल जल का स्वभाव ऐसा प्रगट होय है, जिस विषैं अपना पुरुषाकार प्रतिभासै—ऐसे निर्मल जल को आस्वादे हैं; तैसे बहुत अज्ञानी जीव कर्म संयोग से जिसका ज्ञानस्वभाव आच्छादित हुआ है, ऐसे अशुद्ध आत्मा को अनुभवै है। कोई अपनी बुद्धि करि शुद्ध निश्चयनय के स्वरूप को जानि कर्म को और आत्मा को जुदा-जुदा करै हैं, तहाँ निर्मल आत्मा का स्वभाव ऐसा प्रगट होय है, जिस विषैं अपना चैतन्य पुरुष का आकार (स्वरूप) प्रतिभासे; ऐसे निर्मल आत्मा को स्वानुभवरूप आस्वादे है, तिसते शुद्धनय कतकफल समान है, याके श्रद्धानते सर्व सिद्धि होय है ॥५॥ *(पुरुषार्थसिद्धि उपाय, भाषा टीका श्री टोडरमलजी द्वारा)*

प्रभो, यह अज्ञानप्रवृत्ति कब छूटेगी ?

अब, जिसे बंधन से छूटने की भावना है, ऐसा शिष्य जिज्ञासु होकर पूछता है कि—प्रभो! अनादिकालीन अज्ञान से जो यह कर्त्ता-कर्म की प्रवृत्ति है, उसका अभाव कब होगा ? अरे, चैतन्य को दु:ख देनेवाली यह अज्ञान-प्रवृत्ति कब छूटेगी ? प्रभो! अज्ञान ही इस संसार का मूल है—ऐसा आप कहते हैं, तो अब उस अज्ञान का अभाव कैसे होगा ? शिष्य को अज्ञान से शीघ्र छूटने की लालसा जागृत हुई है, इसलिये उत्कंठापूर्वक श्रीगुरु से ऐसा प्रश्न पूछता है। अनादिकाल तो ऐसे अज्ञान में व्यतीत हो गया, परंतु अब शिष्य जागृत हुआ है... वह दीर्घकाल तक ऐसे अज्ञान में नहीं रहेगा, उसके धर्मलब्धि का काल निकट आ गया है। वह शिष्य पूछता है कि—प्रभो! आत्मा को बंधन का कारण ऐसा यह अज्ञान कब दूर होगा ? शिष्य अज्ञान को नष्ट करने का उपाय जानकर उसे शीघ्र ही दूर करने के लिये तत्पर हुआ है।

ऐसे शिष्य को आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सुन!—

आ जीव ज्यारे आस्त्रवोनुं तेम निज आत्मा तणुं
जाणे विशेषांतर, तदा बंधन नहीं तेने थतुं॥७१॥

आत्मा चैतन्यस्वभावमय है, वह क्रोधादिमय नहीं है, और क्रोधादि वे आस्रवमय हैं, वे चैतन्यमय नहीं हैं;—इसप्रकार दोनों की भिन्नता जानकर जीव जब भेदज्ञान करता है, तब उसके अज्ञान का नाश होता है; और अज्ञान से उत्पन्न हुई ऐसी विकार के साथ की कर्ता कर्म की प्रवृत्ति भी छूट जाती है; वह छूट जाने पर उसको बंधन भी नहीं होता।

इस जगत में वस्तुएँ कैसी हैं ?

इस जगत में जो भी वस्तु है, वह अपने स्वभावमात्र ही है। आत्मा वस्तु है, वह अपने ज्ञानस्वभावमात्र ही है। निश्चय से जो ज्ञान का परिणमित होना, वह आत्मा है। ज्ञान के परिणमन में श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि समस्त भावों का समावेश हो जाता है, किंतु क्रोधादि का समावेश उसमें नहीं होता। अथवा, निश्चयरत्नत्रयरूप जो भाव, वह ज्ञान का परिणमन है, वह आत्मा का स्वभाव है, और व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभभाव, वह वास्तव में ज्ञान का परिणमन नहीं है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। देखो, यह भेदज्ञान!! ऐसा भेदज्ञान ही अज्ञान के नाश का उपाय है। जब ऐसा भेदज्ञान करे, तभी अज्ञान का नाश होता है। ऐसे भेदज्ञान के बिना कभी अज्ञान दूर नहीं होता।

ज्ञान में और क्रोध में किस प्रकार भिन्नता है ?

ज्ञान में क्रोध नहीं है और क्रोध में ज्ञान नहीं है। जीव जब स्वभावोन्मुख होकर ज्ञानरूप से परिणमित होता है, तब उस ज्ञान के परिणमन में ज्ञान का ही भासन होता है किंतु क्रोधादि का भासन नहीं होता; इसलिये ज्ञान में क्रोध नहीं है और जब क्रोधादि में एकरूप होकर परिणमन करता है, तब उस जीव को उस क्रोधादि के परिणमन में क्रोधादि परभाव ही भासित होते हैं, किंतु उसमें ज्ञान का आभास नहीं होता, क्योंकि क्रोधादि ज्ञान नहीं है। इसप्रकार ज्ञान और क्रोधादि में अत्यंत भिन्नता है; इसलिये ज्ञानस्वभावी आत्मा की क्रोधादि के साथ एकता नहीं किंतु भिन्नता है।

देखो, यह अंतर के वेदन की बात! जहाँ स्वभावोन्मुख होकर ज्ञानरूप से परिणमित हुआ, वहाँ क्रोधादि से भिन्नतारूप परिणमन हुआ। वहाँ क्रोध से भिन्न ज्ञान का वेदन हुआ। उस वेदन में क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं होती। ज्ञान की और क्रोध की भिन्नता ज्ञानी के वेदन में स्पष्ट भासित होती है, जहाँ परिणति स्वभावोन्मुख हुई, वहाँ क्रोध से विमुख हुई। परिणति ज्ञानस्वभाव की ओर झुके और उसमें राग की रुचि भी रहे—ऐसा कभी नहीं होता। जहाँ ज्ञान की रुचि है, वहाँ राग की रुचि नहीं है; और जहाँ राग की रुचि है, वहाँ ज्ञान की रुचि नहीं है। ज्ञान में और राग में एक स्वभावपना नहीं है। अस्ति-नास्ति से समझाकर आचार्यदेव ने कैसा स्पष्ट भेदज्ञान कराया है! ऐसा भेदज्ञान करते ही अज्ञान नष्ट हो जाता है।—यह अपूर्व धर्म है।

आराधना

❀ रत्नत्रय की आराधना में स्वद्रव्य का ही सेवन है, परद्रव्य का सेवन नहीं है। ऐसे रत्नत्रय की आराधना जो जीव करता है, वह आराधक है और ऐसे आराधक जीव रत्नत्रय की आराधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं—यह बात जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। रत्नत्रय की आराधना पर के परिहारपूर्वक आत्मा के ध्यान से होती है।

❀ सम्यग्दर्शन से जो शुद्ध है, वह शुद्ध है।

सम्यग्दर्शन का आराधक जीव अल्पकाल में सिद्धि प्राप्त करता है।

सम्यग्दर्शन रहित जीव इष्टसिद्धि को प्राप्त नहीं करता।

—इसप्रकार मोक्ष की सिद्धि के लिये सम्यग्दर्शन की आराधना प्रधान है।

❀ जिनवर भगवान ने गणधरादि शिष्यजनों से उपदेश में ऐसा कहा है कि हे भव्य जीवों! धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई धर्म नहीं होता। जगत में प्रसिद्ध है कि जिस वस्तु की प्राप्ति करना हो, उसकी प्रीति-रुचि-पहिचान करते हैं; उसीप्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिये पहले उसकी प्रतीति-रुचि-पहिचान करना चाहिये। मोक्ष कहो या शुद्ध आत्मा कहो, उसकी प्रतीति, सो सम्यग्दर्शन है।

❀ सम्यग्दर्शन के प्रयत्न के लिये अंतर में रात-दिन एक ही मंथन-चिंतवन कर-करके स्वरूप का निर्णय करना चाहिये; अपना कार्य साधने के लिये परम उत्साह से गाढ़ रुचिपूर्वक दिन-रात मंथन करके उसका निर्णय करना चाहिये। निर्णय का बल दृष्टि को अंतर्मुख करता है।

❀ हे जीव! सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की आराधना भी हो सके, तब तो वह उत्तम है, वह तो साक्षात् मोक्ष का कारण है; और यदि ऐसे चारित्र की आराधना करने की शक्ति वर्तमान में न हो तो यथार्थ मार्ग की श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन की आराधना तो तू अवश्य करना।

जैनदर्शन शिक्षण वर्ग

सोनगढ़ बैशाख सुदी १४ तारीख १४-५-६५ शुक्रवार से जेठ सुदी २ तारीख २-६-६५ बुधवार तक तीन कक्षा के रूप में जैन शिक्षण वर्ग चलेगा। धर्म जिज्ञासुओं को पवित्र तत्त्वज्ञान का लाभ लेने पधारने का आमंत्रण है, आने के पूर्व पत्र द्वारा सूचना दीजियेगा। यह वर्ग मात्र पुरुषों के लिये है।

निवेदक—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

श्री प्रवचनसार शास्त्र

(दूसरी आवृत्ति)

यह शास्त्र भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पवित्र अध्यात्मसाररूप महान ज्ञाननिधि है। जिसमें सातिशय निर्मल ज्ञान के धारक महामहर्षि श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञान-दर्शन (ज्ञेय) और चारित्र अधिकार में स्वानुभव गर्भित युक्ति के बल द्वारा सुनिश्चित द्रव्य-गुण-पर्यायों का विज्ञान, सर्वज्ञ स्वभाव की यथार्थता, स्व-पर ज्ञेयों की स्वतंत्रता, विभाव-(अशुद्धभाव) की विपरीतता बताकर अंत में ४७ नयों का वर्णन भी संस्कृत टीका द्वारा ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा सहित विनय से स्वाध्यायकर्ता अपने को धन्य माने बिना नहीं रह सकते।

धर्म का मूल सर्वज्ञ है, उन्हीं के द्वारा हमारे हितरूप सुख और सुख का सुनिश्चित उपाय जिसप्रकार दर्शाया गया है, उसे उसीप्रकार जो कोई समझेंगे और साथ ही साथ मोक्षमार्ग के प्रणेता तीर्थंकरदेव तथा आचार्यदेव की महानता समझेंगे वही वीतराग विज्ञानमय न्यायमार्ग के अधिकारी हो सकते हैं।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने समस्त जिनागम के साररूप रहस्य को खोलकर धर्म जिज्ञासुओं के प्रति परमोपकार किया है। उसी टीका का प्रामाणिक अनुवाद, बड़े टाईप में उत्तम छपाई, बढ़िया कागज, रेगजिन कपड़ेवाली बढ़िया जिल्द, प्रत्येक गाथा लाल स्याही में छपी है। सभी जिज्ञासु यथार्थ लाभ लें ऐसी भावनावश मूल्य लागत से भी बहुत कम, मात्र ४) रुपया रखा गया है। पृष्ठ संख्या ४७०, पोस्टेज २.१० पैसे, (किसी को कमीशन नहीं है)।

(यह शास्त्र बंबई, दिल्ली, सहारनपुर, बड़ौत, उदयपुर, जयपुर, सागर, भोपाल, उज्जैन, इंदौर, विदिशा, गुना, अशोकनगर, ललितपुर, जबलपुर, खंडवा, सनावद, दाहोद, अहमदाबाद, आदि में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
प्रवचनसार	प्रेस में	जैन बाल पोथी	०-२५
नियमसार	५-५०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
पंचास्तिकाय	४-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
आत्मप्रसिद्धि	४-०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
भाग-२ ०-६० भाग-३	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
योगसार-निमित्त उपादान दोहा	०-१२	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६-०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।